# धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द

( भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य )

द्वितीय भाग

स्वामी अपूर्वानन्द द्वारा संकलि

श्रीरामकृष्ण आश्रम

धन्तोली, नागपुर

[मूल्य २॥)

# निवेदन

प्रभु की कृपा से 'धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द' यह द्वितीय भाग हम पाठकों के हाथ में रख । इन प्रसंगों के भीतर से स्वामी शिवानन्दजी के त-जीवन का स्पर्श पाठकों के अन्दर यदि किंचित् भी मित हो सका, तो हम अपना प्रयास सार्थक समझेंगे।

श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री, एम. ए. और पण्डित व्रजनन्दन इन बन्धुद्वय के प्रति हम विशेष कृतज्ञ हैं, जिन्होंने बँगला ग्रन्थ से प्रस्तुत पुस्तक का सफल अनुवाद है।

प्रकाशक

महाराज—"दादा, तुम बड़ी भक्तिपूर्वक माँ की पूजा करते हो। भक्ति-विश्वास न होने से खाली पूजा से कुछ नहीं होता। भक्ति-विश्वास के बल से ही मृण्मयी मूर्ति चिन्मयी हो उठती है। यही देखो न, ठाकुर की भक्ति के बल से ही दक्षिणेश्वर में माँ जाग उठी थीं। नहीं तो माँ काली की मूर्ति तो अनेक मन्दिरों में है; किन्तु सब मन्दिरों में क्या माँ चिन्मयी होकर है? तुम लोग भी यदि खूब भक्ति-विश्वास के साथ माँ की पूजा करोगे, तो माँ जागरूक रहेंगी। ठाकुर ने जिस वंश में जन्म-ग्रहण किया था, तुम लोग भी उसी वंश के हो। तुम लोग क्या कम हो! तुम्हारे अन्दर ठाकुर का वही रक्त है। तुम लोगों पर माँ की विशेष कृपा है। दक्षिणेश्वर में माँ काली खूब जाग्रत् हैं। वहाँ माँ का विशेष प्रकाश है।"

शिबू दादा—"सो थोड़ा-थोड़ा आप लोगों के आशीर्वाद और माँ की कृपा से समझ पा रहा हूँ। पहले-पहल जब पूजा-कार्य में लगा था, तब पूजा आदि विशेष कुछ नहीं जानता था। मन-ही-मन बड़ा डर लगने लगा। किसके बाद क्या पूजा करनी चाहिए, यह भी नहीं जानता था। किन्तु फिर देखा कि जब माँ के पास खूब प्रार्थना कर पूजा करने बैठता था, तो स्पष्ट सुनाई पड़ता था, मानो कोई कह रहा है, 'इसके बाद यह करो, अब दशमहाविद्याओं की पूजा करो।' इस प्रकार सब बातें मानो कोई कहे दे रहा हो। इतना स्पष्ट सुनाई पड़ता था कि चारों ओर चौंककर देखने लगता था कि कौन कहाँ से बोल रहा है।"

महाराज—"तभी तो! दक्षिणेश्वर की माँ काली के ।न इतनी जाग्रत् मूर्ति दूसरी नहीं है। ठाकुर ने अपनी भक्ति ‌‌से माँ को जीवन्त बना रखा था। ठाकुर की सब लीलाएँ

तो तुमने देखी ही हैं, दादा! जब पूजा करो, उस समय साथ-साथ यह भावना भी करना कि माँ जीवन्त है।"

शिबू दादा—"उसका यथेष्ट प्रमाण पा चुका हूँ। जब बचपन में पूजा करना आरम्भ किया था, तो रोज रात में सोने से पहले जगदम्बा से कह जाता था, 'माँ, अब मैं सोने जा रहा हूँ। इस समय तो जाकर सो रहूँगा; पर सबेरे नींद खुलती है या नहीं कौन जाने। पर तुम मंगल-आरती से पहले मुझे उठा देना।' माँ रोज मुझे झकझोरकर उठा देती और कहती, 'जा, उठ, अब मंगल-आरती का समय हो गया।' और भी कितनी ही बातें माँ ने कृपा करके मुझे दिखाई हैं!"

इस प्रकार अनेक वार्तालाप के बाद शिबू दादा ने महापुरुष महाराज को प्रणाम किया और दक्षिणेश्वर लौट जाने के लिए उनसे विदा ली। उनके चले जाने पर महापुरुषजी बोले, "अहा! शिबू दादा कैसा सरल है! उसके ऊपर माँ की बड़ी कृपा है। सरल हृदय में माँ का प्रकाश शीघ्र ही होता है।"

## बेलुड़ मठ

### शनिवार, २८ सितम्बर, १९२९

अपराह्न काल। मूसलाधार वर्षा हो रही है। महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे हुए हैं। बंगाल की किसी एक विशिष्ट संस्था के दो भक्त कार्यकर्ता बहुत देर से उनके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शारीरिक अस्वस्थता के कारण लोगों के साथ उनका मिलना-जुलना बहुत कम कर दिया गया है। कुछ समय बाद उन दोनों कार्यकर्ताओं को उनके पास जाने की

अनुमति हुई। उन लोगों ने प्रणाम करके कहा, "महाराज, हम लोग आपके पास कुछ उपदेश लेने आए हैं। आप रामकृष्ण देव की अन्तरंग सन्तान हैं, हम लोगों को आशीर्वाद दीजिए। हमें एक-दो बातें भी पूछनी हैं। यदि आज्ञा हो, तो कहूँ।"

महाराज—"हाँ, हाँ, क्या कहना है अवश्य कहो।"

भक्त—"ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव दिव्य शरीर धारण कर जगत् के कल्याणार्थ अवतीर्ण हुए थे। स्थूल शरीर में रहते हुए उन्होंने अपने अन्तरंग भक्तों को लेकर एक संघ या group तैयार किया था और अपने सम्पूर्ण जीवन की साधना-लब्ध समस्त शक्ति मानो उन्होंने इस संघ के बीच संचारित कर दी थी। वही संघ अब भी चल रहा है। हमारा प्रश्न यह है कि उन्होंने किस प्रकार अपने अन्तरंग भक्तों को संघबद्ध किया और किस बन्धन द्वारा उन्होंने सबको बाँध रखा?"

महाराज—"प्रेम ही वह एकमात्र बन्धन था। उन्होंने प्रेमसूत्र में सबको एक साथ पिरो रखा था। हम सब लोग उनके प्रेम से आकृष्ट होकर, उनके स्नेह से मुग्ध होकर ही उनके पास आए थे और धीरे-धीरे एकत्र हो गए थे। उनका स्नेह ऐसा था कि उसकी तुलना में माता, पिता आदि आत्मीय-स्वजनों का स्नेह भी तुच्छ जान पड़ता था। अब भी उनका वह संघ प्रेम के द्वारा ही परिचालित हो रहा है। यहाँ प्रेम ही एकमात्र common cord (संयोगसूत्र) है, जिसमें एक साथ गुँथे हुए हम सब लोग संघबद्ध हैं।"

भक्त—"अच्छा महाराज, जिस प्रेमशक्ति की डोर से *ठाकुर ने आप सब लोगों को एक साथ बाँध रखा था और आप* लोगों के भीतर जो प्रेमशक्ति ठाकुर ने संचारित की थी, उसका

तो समय के साथ ह्रास हो रहा है, तथा आगे और भी होगा। तो फिर अब वह शक्ति किस प्रकार अक्षुण्ण बनी रह सकेगी? किस प्रकार उस शक्ति-प्रवाह को दीर्घ काल तक जगत् के कल्याणार्थ अविच्छिन्न और अव्याहत रखा जाय?"

महाराज —"देखो, इस नश्वर जगत् में कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं है। कोई भी शक्ति चिरकाल तक समान रूप से कार्य नहीं किए जा सकती। शक्ति की गति कैसी है, जानते हो?—ठीक wave (तरंग) के समान। Wave-like motion (तरंगायित गति) में शक्ति खेल करती है। कभी-कभी बड़े वेग से बहुत ऊपर उठती है, और कभी मन्द गति से नीचे की ओर जाती है। यही चिरकाल से होता रहा है। और यह जो आज मन्द गति-सी दिखाई देती है, वही भविष्य में वेगमयी गति की सूचना दे रही है। अब किस प्रकार इस शक्ति को अव्याहत रखा जाय, यह मनुष्य भला कैसे जानेगा? इसे तो केवल माँ ही जानती है। जिन महाशक्ति में से इस जगत् में शक्ति का उद्भव हो रहा है, एकमात्र वे ही जानती है कि किस तरह इस शक्ति की रक्षा की जाय। जो आद्याशक्ति महामाया जगत् के कल्याणार्थ अपनी शक्ति की अभिव्यक्ति करती है, वे ही जानती हैं कि किस प्रकार और कब तक वे उस शक्ति को वेगमयी बनाए रखेंगी। हम लोगों के लिए उनके ऊपर पूर्णतया निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई उपाय है ही नहीं।"

भक्त —"हम लोगों ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव को जीवन का आदर्श बनाया है। उन्हीं के भाव में अपने जीवन को गढ़ने की चेष्टा भी करते हैं। इस विषय में आपकी सहायता की याचना

करते हैं। आप ठाकुर के अन्तरंग पार्षद हैं। कृपा कर हमें थोड़ा सा आलोक प्रदान कीजिए।"

महाराज—"बच्चा, तुम लोग धन्य हो, जो तुमने श्रीरामकृष्ण को जीवन का आदर्श बनाया है। वे ही इस युग के ईश्वर हैं। जो उनके शरणागत होगा, उसका कल्याण अवश्य होगा। मैं बहुत आशीर्वाद देता हूँ, तुम लोगों को शान्ति मिले, तुम लोग धन्य हो जाओ। तुम लोगों का मानव-जीवन सार्थक हो। और, बच्चा, जिस आलोक की बात करते हो, वह तो भीतर से आता है। जितना अन्तर्मुखी होने की चेष्टा करोगे, जितना अन्तर से भी अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश करोगे, उतना ही आलोक दिखाई देगा। आलोक बाहर कहीं भी नहीं है। सब भीतर है—भीतर। वे प्रकाशस्वरूप माँ सबके अन्दर हो हैं। मेरे, तुम्हारे, सबके भीतर ही हैं। वे ब्रह्म से लेकर कीट-परमाणु, स्थावर-जंगम सबमें हैं। उन्हीं आदिभूता महामाया के पास प्रार्थना करो; सब कुंजियाँ उनके पास हैं। वे थोड़ी कृपा करके यदि चाबी घुमा दें, तो आलोक-राज्य खुल जायगा। वे चैतन्य-स्वरूप सबकी नियन्ता आद्याशक्ति ही मन, बुद्धि, अहंकार सबकी कर्ता हैं—समस्त जगत् की उत्पत्ति-स्थान हैं। उन्हीं माँ के अन्दर से हम सब लोग आए हैं और उन्हीं में फिर हम सबका लय हो जायगा।

'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥'*

---

* मुण्डक उपनिषद्—२।१।३. इस (अक्षर पुरुष) से ही प्राण उत्पन्न होता है तथा इससे ही मन, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल और सारे संसार को धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।

"और वे आद्याशक्ति, वे ब्रह्मशक्ति साधारण बुद्धि और मन के अगम्य हैं। शुद्ध मन में उनका प्रकाश होता है। साधन-भजन द्वारा मनुष्य उनको पकड़ नहीं सकता — उनकी धारणा नहीं कर सकता। वे स्वयंप्रकाश हैं। उनकी चैतन्यशक्ति से ही जगत् चैतन्यमय है।—

'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥' †

—'वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्र, न तारागण; यह विद्युत् भी वहाँ प्रकाशित नहीं होती, फिर भला अग्नि की तो बात ही क्या! वे प्रकाशित हैं, इसी कारण उनके पीछे-पीछे सब कुछ प्रकाशित होता है। समग्र जगत् उन्हीं की ज्योति से प्रकाशित है।' तुम लोग उन्हीं माँ की शरण लिए रहो। वे तुम्हारे भीतर ही हैं। वे ही तुम लोगों के लिए प्रकाश का मार्ग खोल देंगी।"

भक्त —"आपने इस सुदीर्घ जीवन-व्यापी तपस्या द्वारा जो प्राप्त किया है, उस सम्बन्ध में दया कर हमें कुछ बताइए। और अपने आशीर्वाद द्वारा हमारे लिए उस प्रकाश के मार्ग को खोल दीजिए।"

महाराज —(स्नेहपूर्वक)—"यही जो कहा है, बच्चा, वह प्रकाश तो तुम्हारे भीतर ही है। भीतर डूब जाओ, तभी प्रकाश का पता पाओगे।—

† मुण्डक उपनिषद् — २।२।१०

'डूब डूब रूपसागरे आमार मन ।
तलातल पाताल खुँजले पाबिरे प्रेमरत्नधन ।'*

जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं, वैसे-ही-वैसे यह भाव मुझमें दृढ़ होता जा रहा है। यह छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं। सब भीतर है। तभी तो ठाकुर गाते थे—

'आपनाते आपनि थेको मन, जेओो नाको कारो घरे।
जा चाबि ता बसे पाबि, खोजो निज अन्तःपुरे ॥
परमधन सेइ परशमणि, जा चाबि ता दिते पारे।
कतो मणि पड़े आछे, चिन्तामणिर नाचदुयारे ॥'†

तभी तो कहता हूँ बच्चा, अपने अन्दर ही खोजो। यही सार उपदेश है। माँ के शरणागत होओ। व्याकुल होकर, बालक के समान रो-रोकर प्रार्थना करो। तभी आलोक देख सकोगे। हम लोग भी जब कभी ठाकुर से पूछते, तो वे हमसे कहते, 'अरे, माँ के पास व्याकुल होकर प्रार्थना करो, वे रास्ता साफ कर देंगी।' उन्होंने बार-बार हमें यही उपदेश दिया। मैं भी तुम लोगों से कहता हूँ, रोओ, प्रार्थना करो। 'माँ, दर्शन दो, दर्शन दो,' कहकर रोओ। देखोगे, माँ आनन्दमयी तुम्हारे हृदय में आनन्द और शान्ति देंगी, अवश्य देंगी।"

भक्त—"सो तो बिलकुल सत्य बात है, महाराज, कि

* ओ मेरे मन, तू रूप के समुद्र में डुबकी लगा। तलातल और पाताल खोजने पर प्रेमरूपी रत्न-धन तेरे हाथ लगेगा।

† हे मन, तुम अपने आप में ही रहो, कहीं और न जाओ। अपने भीतर ही खोजो। मन, फिर जो चाहोगे, सो बैठे ही मिल जायगा। वह परम धन है, पारस-मणि है, जो चाहोगे वही दे सकता है। इस चिन्ता-मणि के प्रवेश-द्वार में कितने ही मणि पड़े हुए हैं!

वह प्रकाश भीतर से ही आता है; किन्तु उस प्रकाश की उपलब्धि के लिए बाहरी शक्ति की सहायता भी तो आवश्यक है? गुरु-शक्ति की भी तो आवश्यकता है? हम लोग आपसे उसी की भीख मांगते हैं।"

महाराज—"मैं खूब आन्तरिक आशीर्वाद देता हूँ, जिससे तुम्हें शान्ति मिले। उस शान्तिधाम में पहुँचने का मार्ग भी मैंने तुम लोगों से कह दिया; किन्तु सब करना होगा तुम्हें ही। बाहर से केवल suggestion (उद्दीपन) मिलेगा, और शेष सब स्वयं को ही करना पड़ेगा। गुरुशक्ति है वही suggestion (उद्दीपन)। जितना उस ओर बढ़ोगे, उतना ही रास्ता साफ देखोगे।"

भक्त—"महाराज, एक प्रश्न हमारा और है। उसकी मीमांसा के लिए भी हम प्रार्थना करेंगे। स्वामी सारदानन्द† लिखित श्रीश्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग में पढ़ा है कि ठाकुर ने कठोर साधना के पश्चात् निर्विकल्प समाधि प्राप्त की। उस श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के बाद जब वे जगन्माता के निर्देशानुसार लोक-कल्याण में रत हुए, तो उन्होंने शास्त्रानुसार विवाहित पत्नी को भी अपने समीप रखा, तथा अन्यान्य अन्तरंग भक्तों के समान अपनी पत्नी को भी उन्होंने अपने समीप रख सब प्रकार से शिक्षा-दीक्षा दी तथा धीरे-धीरे उन्हें तत्त्वज्ञान की अधिकारिणी बना दिया। यह जो ठाकुर ने ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भक्तों का संग किया और अपनी पत्नी को समीप रखा, इससे क्या सूचित होता है? ठाकुर तो युगाचार्य थे। वे युगधर्म-संस्थापन के लिए इस जगत् में आए थे। अपने जीवनादर्श के द्वारा वे युगधर्म का निर्देश कर-

† भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य।

गए। अपने जीवन द्वारा क्या उन्होंने future generation (भावी पीढ़ी) की जीवनधारा की ओर संकेत नहीं किया?"

महाराज — "हाँ, श्रीश्रीमां* दक्षिणेश्वर में जब ठाकुर के चरणों में उपस्थित हुईं, तब ठाकुर ने उन्हें भगा नहीं दिया, परन्तु अत्यन्त स्नेहपूर्वक पास रखा, और बड़े स्नेह से उन्हें साधन-भजन के सम्बन्ध में उपदेश दिए, उत्साहित किया और सब प्रकार से उनकी सहायता की। किन्तु ठाकुर ने यह सब निर्विकल्प समाधि-लाभ के उपरान्त किया था। इस विषय में ठाकुर ने जो हमसे कहा था, वह सुनकर तुम लोग समझ जाओगे। ठाकुर कहते थे, 'काली-मन्दिर में जो माँ हैं, इसके भीतर (अपना शरीर दिखाकर) वे ही माँ विराजमान हैं और वे ही माँ (श्रीश्रीमां के रूप में) मेरे पास रहती हैं।' ठाकुर ने ऐसा क्यों किया, यह तो, बच्चा, हमने कभी समझना नहीं चाहा, चेष्टा भी नहीं की। वह तुम लोग समझ सको तो समझो। ठाकुर ने ऐसा किया था, केवल इतना ही हम लोग जानते हैं। भगवान स्वयं नर-देह धारण कर श्रीरामकृष्ण-रूप में आए थे। उनके कार्य का उद्देश्य समझना हम जैसे क्षुद्रबुद्धि द्वारा असाध्य है। फिर उसे समझने की प्रवृत्ति भी कभी नहीं हुई। स्वामीजी † जब विश्वविजयी होकर अमेरिका से स्वदेश लौट आए, तब एक दिन गिरीश बाबू § ने स्वामीजी से कहा, 'देखो नरेन‡, मेरे विशेष अनुरोध से तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।' गिरीश बाबू स्वामीजी से बहुत स्नेह करते थे न, इसी

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव की धर्मपत्नी श्रीसारदा देवी।

† स्वामी विवेकानन्द।

§ भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग गृही भक्त।

‡ स्वामी विवेकानन्दजी का पूर्व नाम।

लिए इस प्रकार कहा। स्वामीजी ने बड़ी तत्परता से कहा, 'आप इस प्रकार क्यों कहते हे ? क्या करना होगा बताइए न।' तब गिरीश बाबू ने कहा, 'तुम्हें ठाकुर की एक जीवनी लिखनी पड़ेगी।' यह सुनते ही स्वामीजी एकदम दो हाथ पीछे हट गए और गम्भीर हो बोले, 'देखिए, गिरीश बाबू, मुझसे इस बात का अनुरोध न कीजिए। यह काम छोड़कर आप जो करने को कहे, मैं सानन्द करूँगा। यदि दुनिया उलट-पलट कर देने को कहें, तो वह भी करूँगा, किन्तु यह काम मुझसे नही होगा। वे इतने महान् थे कि मैं उन्हें कुछ भी नही समझ पाया। उनके जीवन के एक कण को भी मैं न जान सका। क्या आप मुझसे शिव गढ़ते-गढ़ते अन्त मे बन्दर बना डालने को कह रहे हे ? मैं यह नही कर सकूँगा।' देखो, स्वामीजी के समान इतने बड़े आधार भी जब ठाकुर का कार्य-कलाप कुछ नहीं समझ पाए, तब फिर हम भला किस खेत की मूली हे ! और फिर हम लोगों ने वह सब समझने की चेष्टा भी नही की। उनको जानना क्या मनुष्य के लिए सम्भव है। देखो, शायद तुम लोग कुछ समझ सको। प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सब वस्तु जानने की चेष्टा करता है। हम लोग कहते हैं, 'ठाकुर, हम तुम्हें जानना नही चाहते, केवल इतना कर दो, जिससे तुम्हारे श्रीचरणों में हमारी श्रद्धा-भक्ति अटल और अचल बनी रहे।' सो वे कृपा करके हमारी प्रार्थना सुनते हैं।"

भक्त—"महाराज, आशीर्वाद दीजिए, जिससे हमारा भी ऐसा ही हो, जीवन में जिससे शान्ति लाभ कर सकें।"

महाराज—"सो तो, बच्चा, बहुत आशीर्वाद देता हूँ। तुम लोगों का ज्ञान खूब बढ़े, बड़े आनन्द में रहो और यथाशक्ति

देश-कल्याण का कार्य करो। खूब आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ (आँखें मूँदकर) तुम लोगों के लिए। तुम लोग बहुत आगे बढ़ जाओ, बहुत बढ़ जाओ। भगवान की ओर खूब अग्रसर हो जाओ।"

दोनों भक्तों ने बारम्बार महापुरुषजी की चरणरज मस्तक पर धारण की और विदा ली। उन लोगों के मुख का भाव देखकर ऐसा जान पड़ा कि वे परिपूर्ण हृदय से वापस जा रहे हैं।

## बेलुड़ मठ

### मंगलवार, २१ अक्तूबर, १९२९

अपराह्न काल। कोई ५ बजे होंगे। महापुरुष महाराज अपने कमरे में बैठे हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है। कुछ दिनों से सर्दी, श्वास-कास और ज्वर ने पीड़ित कर रखा है। अधिक बातचीत करने से कष्ट होता है। परन्तु लोगों की व्याकुलता और दुःख-कष्ट की बातें सुनकर उनका हृदय भर आता है। फिर और अधिक वे स्थिर नहीं रह सकते—अपनी देह के कष्ट को भूलकर, किस प्रकार उन लोगों को वे थोड़ी सान्त्वना और शान्ति दे सकेंगे इसी विचार से व्यस्त हो उठते हैं।

एक 'रिटायर्ड' जज अपने पुत्र और विधवा कन्या तथा न्नी के साथ आए। उन लोगों के प्रणाम करने पर महाराज ने हे स्नेहपूर्वक उनसे बैठने को कहा। जमीन पर एक चटाई बिछी थी। वे लोग उसी पर बैठ गए। सामान्य बातचीत के ाद उन सज्जन ने अपनी कन्या की ओर संकेत करते हुए कहा, यह मेरी कन्या है। इसके पति की मृत्यु हो गई है। बहुत ु है। अब भी शोक सँभाल नहीं पाई, इसलिए आपके

पास लाया हूँ।" यह बात सुनकर महापुरुष महाराज 'ओहो!' 'ओहो!' करने लगे और थोड़ी देर गम्भीर रहकर धीरे-धीरे बोले, "संसार की यही गति है, भाई! शोक-ताप, दु:ख-कष्ट, ज्वाला-यन्त्रणा यही सब तो संसार है। यथार्थ सुख-शान्ति तो संसार में बहुत ही कम है। और यह जो जन्म-मृत्यु का प्रवाह है, उसे कोई रोक नहीं सकता। इसमें मनुष्य का कोई हाथ नहीं। भगवान ही इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के कर्ता हैं। उन्हीं की इच्छा से जीव इस संसार में जन्म-ग्रहण करता रहता है। वे जितने दिन रखना चाहें, रखते हैं और जब इच्छा होती है, ले जाते हैं। इसी ज्ञान को पक्का कर लेना होगा कि जन्म, स्थिति और मृत्यु के कर्ता एकमात्र भगवान हैं। वे ही जीव को इस संसार में माता, पिता, स्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धव के रूप में भेजते हैं, और जब तक इच्छा होती है, जीव को किसी-न-किसी सम्बन्ध से बाँधकर रख देते हैं; और जब इच्छा होती है, फिर ले जाते हैं। जब तक मनुष्य का यह ज्ञान पक्का नहीं होगा, इसकी धारणा नहीं होगी, तब तक उसे शोक-सन्तप्त रहना पड़ेगा। किन्तु यह ज्ञान, यह धारणा पक्की होने पर, दृढ़ हो जाने पर फिर शोक-सन्ताप नहीं होता, दु:ख का विषय फिर कुछ नहीं रह जाता। फिर भी, यह अवश्य देखना चाहिए कि भगवान ने जिनके साथ हमें सम्बन्धित कर रखा है, उनकी सेवा में हमसे कोई त्रुटि न हो। यदि कोई त्रुटि होती हो, तो उसके लिए हमें दु:खी होना चाहिए। फिर, मनुष्य का कार्य केवल शोक करना ही तो नहीं है, यह छोड़कर और भी कितने ही काम हैं। संसार के काम-काज तो हैं ही, किन्तु इनके अतिरिक्त जीवन का जो लक्ष्य है,

उस ओर भी तो आगे बढ़ना चाहिए। नहीं तो केवल हाय-हाय अथवा शोक करने से क्या होगा? जीवन केवल शोक करने के लिए तो नहीं है? इस जन्म, जरा और मृत्यु से परे जाना पड़ेगा, उन परम प्रेमास्पद श्रीभगवान को पाना होगा; तभी सम्पूर्ण दुःखों का अन्त हो जायगा।

'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥' *

—'जिस (आत्मसाक्षात्कार) को प्राप्त कर मनुष्य अन्य किसी लाभ को उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थित होकर वह अत्यन्त गहरे दुःख में भी विचलित नहीं होता।' दुःख-कष्ट को भी प्रेमास्पद श्रीभगवान का आशीर्वाद जानकर सानन्द वरण करना पड़ेगा। भगवान की एकान्त शरणागति के बिना जीव इन सब शोक-सन्तापों को अविचलित भाव से सहन नहीं कर सकता। साधारण लोगों के लिए संसार के घात-प्रतिघात सहना बड़ा कठिन काम है। ठीक-ठीक भक्त एकमात्र भगवद्विश्वास के बल पर ही इन सब शोक-सन्तापों से प्रभावित नहीं होता। फिर, मानव-जीवन का लक्ष्य भी तो यही है — वही शुद्धा भक्ति, शुद्ध प्रेम की प्राप्ति करना, उस भूमानन्द का अधिकारी बनना। भगवान की ओर आगे बढ़ जाओ, माई। जितना उस ओर आगे बढ़ोगी, उतनी ही शान्ति मिलेगी। इस संसार में किसी भी वस्तु में शान्ति नहीं, एकमात्र श्रीभगवान के श्रीचरण ही शान्ति का धाम है।"

## बेलुड़ मठ

शुक्रवार, १ नवम्बर, १९२९

गत रात्रि को बड़े समारोह के साथ काली-पूजा हुई है। सारी रात पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन से सारा मठ मुखरित रहा। कलकत्ते से भी अनेक साधु और भक्तों ने मठ में पूजा के आनन्दोत्सव में भाग लिया। रात साढ़े नौ बजे माँ की पूजा आरम्भ हुई, और समाप्त हुई सवेरे पौने छः बजे। पूजा के बाद होमाग्नि में सप्तशती होम भी किया गया।

सारी रात महापुरुषजी भी पूजा के आनन्द में मग्न रहे। रात में अनेक बार सेवकों को भेजकर पूजा का सब समाचार मालूम करते रहे। जब काली-कीर्तन हो रहा था, उस समय उन्होंने भी साथ-साथ गाया। जब —'गया गंगा प्रभासादि काशी-कांची केबा चाय। काली काली काली बोले, अजपा यदि फुराय'* गीत गाया जा रहा था, तब उन्होंने कहा, "अहा, इस गीत को ठाकुर बहुत गाते थे।" और उन्होंने पूरा गान साथ-साथ गाया।

प्रातःकाल महापुरुषजी अपने कमरे में बैठे हुए हैं। साधु और भक्तगण एक-एक करके उनको प्रणाम करने के लिए उनके कमरे में एकत्रित हो रहे हैं। गत रात्रि की पूजा के आनन्द में वे अभी भी मग्न हैं। प्रत्येक बात में, प्रत्येक कार्य में हृदय के उस आनन्द की अभिव्यक्ति हो रही है। कुछ देर बाद उनके लिए माँ की पूजा का प्रसाद लाया गया। प्रसाद देखकर उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। हँसते-हँसते बोले, "यह सब तो मुझे कुछ भी नहीं चलेगा। दृष्टि-

* यदि काली-काली कहते मेरा जीवन व्यतीत हो जाय, तो फिर गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि कौन चाहता है?

भोग लगा दिया गया है।" यह कहकर प्रत्येक वस्तु को एक-एक बार उंगली के अग्रभाग से स्पर्श करके पहले मस्तक में और फिर जिह्वा में छुआकर कहने लगे, "वाह, अच्छा बना है, माँ का बहुत सुन्दर भोग बना है।" सेवक जब प्रसाद की थाली उनके सामने से ले जा रहा था, उस समय उन्होंने कहा, "देखो, महाप्रसाद की पत्तलें कुत्तों के लिए रख देना। उन्हें माँ और कोई देता नहीं! अहा, वे भी तो आशा लगाए बैठे हैं! कितने आनन्द के साथ खाएँगे।" इतना कह वे 'मैलो मैलो' कहकर पुकारने लगे।

गत रात्रि की पूजा की बात उठते ही वे बोले, "अहा! अभी भी समग्र मठ मानो होम की सुगन्ध से भरपूर है। होम की सुगन्ध जहाँ तक जाती है, वहाँ तक सब कुछ पवित्र हो जाता है। वाह, कैसी मधुर गन्ध है!" यह कहकर अपनी नाक द्वारा उस सुगन्ध को खींचने लगे।

एक संन्यासी पूजा के प्रसंग में बोले, "महाराज, कल बहुत आनन्द हुआ था। इस प्रकार आनन्द बहुत दिनों से नहीं हुआ। भजन भी बड़ा अच्छा जमा था, रात लगभग तीन बजे तक।"

महापुरुषजी — "होगा क्यों नहीं? माँ की पूजा जो हुई है! माँ ने कृपा कर सभी को बहुत आनन्द दिया है। माँ ने साक्षात् आविर्भूत हो पूजा ग्रहण की है। और यह माँ ऐसी-वैसी माँ तो नहीं है, ये तो ठाकुर की 'माँ' हैं। ठाकुर ने स्वयं माँ काली की पूजा की थी। वेद में जिनको 'सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म' कहा गया है, द्वैतवादी जिन्हें ईश्वर कहते हैं, शाक्त जिन्हें शक्ति कहते हैं और वैष्णव के जो विष्णु एवं शैव के जो शिव हैं, ठाकुर उन्हीं को माँ कहते थे। और उन माँ

की पूजा करने से ही ठाकुर को सभी प्रकार की अनुभूति हुई थी। उन्होंने अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत इत्यादि सभी भावों से सिद्धि-लाभ किया था। यहाँ जिस प्रकार पूजा होती है, वैसी और कहीं भी नहीं होती। यहाँ पर साधु-भक्तगण भक्ति से पूजा करते हैं। जिनके पास रुपए हैं, वे अनेक प्रकार के आडम्बर रचकर, हजार-हजार रुपया खर्च कर पूजा कर सकते हैं। किन्तु इस प्रकार भक्तिभाव के साथ पूजा अन्यत्र कहीं नहीं होती। शुद्धसत्त्व साधु-ब्रह्मचारियों ने हृदय से पूजा की है—कितनी आन्तरिकता है उनकी पूजा में और कितनी अपार श्रद्धा! माँ ऐसी पूजा से बहुत प्रसन्न होती हैं। अधिकांश लोग तो नाना प्रकार की कामनाएँ लेकर पूजा करते हैं; निष्काम पूजा, भक्ति की पूजा कितने लोग करते हैं? यहाँ पर किसी की भी कोई कामना नहीं, कोई वासना नहीं, केवल माँ की प्रीति के लिए ही यह पूजा है। साथ-साथ कितना जप, ध्यान, पाठ, भजन आदि होता है। और यह सब माँ की पूजा का आयोजन शुद्ध-सात्त्विक; पवित्र साधु-ब्रह्मचारी लोग करते हैं। इस प्रकार, बच्चा, अन्यत्र कहीं नहीं होता। इस प्रकार की सर्वांगसुन्दर सात्त्विक पूजा संसार में विरल है।"

कोई दस बजे होंगे। एक स्त्री भक्त आई हुई हैं। उन्हें महापुरुषजी की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ है। वे उनके चरणों में भक्तिपूर्ण हृदय से प्रणाम कर कुशल-प्रश्न आदि पूछने लगीं। उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं माई, स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अत्यन्त खराब है। दिन-पर-दिन और भी अवनति की ओर ही जायगा। शरीर का भी तो एक धर्म है? फिर

इस देह की आयु भी तो कम नहीं है ? अब धीरे-धीरे इस देह का नाश हो जायगा ।"

स्त्री भक्त सजल नयनों से बोलीं, "बाबा, आपके चले जाने पर हम लोग किसके पास जाएँगी ? अपने प्राणों को शीतल करने के लिए हमारे लिए और स्थान कहाँ है ?"

महापुरुषजी —"क्यों माई ! ठाकुर तो हैं। वे तो तुम्हारे अन्दर ही हैं । वे तो तुम्हारी अन्तरात्मा हैं — सभी के प्राणों के प्राण हैं । उनका आश्रय लो, उनके पास प्रार्थना करो, वे तुम्हारे प्राणों में शान्ति देंगे, तुम्हारे सभी अभाव पूर्ण कर देंगे । देह का नाश तो एक दिन होगा ही । कोई भी देह चिरकाल तक नहीं रहती । पांचभौतिक देह अवश्य पंचभूतों में मिल जायगी । अतएव जो चिरसत्य, नित्य, अपरिणामी, सर्वभूतों के चैतन्यस्वरूप श्रीभगवान हैं, उन्हीं का आश्रय लो, उन्हीं को पकड़े रहो । ऐसा होने पर इस दुस्तर संसार-समुद्र में फिर कोई भय नहीं रहेगा — अनायास ही इसके पार हो जाओगी ।"

स्त्री भक्त — "बाबा, आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही ने मुझ पर कृपा की है । हम लोगों के मन में कितने प्रकार के प्रश्न, कितने सन्देह, कितने नैराश्य-भाव आते हैं, वह सब दूर करेगा कौन, कौन मिटाएगा ? यही देखिए, आपके श्रीचरणों में आई हूँ — इससे प्राणों में कितनी शान्ति है, कितना आनन्द है । किन्तु आपके चले जाने पर क्या होगा ? यह सोचकर तो मेरे प्राण रो उठते हैं ।"

महापुरुषजी —"देखो माई, तुम्हें तो सब बात बतला दी है । गुरु हैं एकमात्र भगवान । वे ही जगद्गुरु हैं । स्वयं पूर्ण ब्रह्म भगवान जीवों का उद्धार करने के लिए नर-देह धारण कर

रामकृष्ण-रूप में आए थे। हम लोगों को भी वे अपने साथ लाए थे। ठाकुर पचास वर्ष तक नर-देह में रहकर कितने ही लोगों पर अनेक प्रकार से कृपा कर समग्र जगत् के सामने एक अलौकिक जीवन-आदर्श रख गए हैं। उनके जीवन का सार उपदेश, जिसे वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में दिखा गए हैं, यही है :—जगत् असत्य है, अनित्य है; एकमात्र भगवान ही सत्य है, नित्य हैं। इस समय वे सूक्ष्म देह में रहकर सूक्ष्म रूप से जगत् के हितसाधन में सलग्न हैं। अभी भी भगवद्भक्तों के व्याकुल होकर पुकारने पर वे उनको दर्शन देते हैं, अनेक प्रकार से कृपा करते हैं। हम लोगों को उन्होंने अभी भी स्थूल देह में रखा है। इस देह के नष्ट हो जाने पर हम लोग भी चिन्मय देह में भगवान के साथ एक होकर रहेंगे। हम लोगों ने जिसको आश्रय दिया है, जिसे अपना लिया है, उसके इहकाल और परकाल का सभी भार हमने अपने ऊपर ले लिया है। भक्त लोग यदि पवित्र हृदय और व्याकुल भाव से पुकारेंगे, तो वे हम लोगों को भी देख सकेंगे—जैसे इस समय देख रही हो, इसकी अपेक्षा और भी अधिक जीवन्त एवं स्पष्ट रूप से। अतएव माई, आज से अन्तर में देखने की चेष्टा करो। बाहर का देखना-सुनना भला कितने दिन का ?"

स्त्री भक्त—"यही आशीर्वाद दीजिए बाबा, जिससे आपको अन्दर-बाहर सर्वत्र देख सकूँ।"

महापुरुषजी—"वैसा होगा। बहुत व्याकुल हो रो-रोकर पुकारते हो देख पाओगी। लेकिन यदि पूर्ण व्याकुलता न हुई, तो नहीं होगा।"

स्त्री भक्त—"बाबा, मेरा एक प्रश्न है। शास्त्र में है

कि ब्रह्मचर्य का पालन किए बिना भगवान का लाभ नहीं होता। ब्रह्मचर्य-पालन के बिना चित्त शुद्ध नहीं होता। उस ब्रह्मचर्य का पालन इस समय किस प्रकार से करना होगा, सो कृपा करके आप मुझे बताइए। खाने-पीने में क्या बहुत कठोरता रखनी होगी?"

महापुरुषजी — "नहीं माई, खाने-पीने के सम्बन्ध में कोई ऐसा विशेष नियम नहीं करना होगा। लेकिन थोड़ा देख-भालकर खाना होगा। जो पदार्थ बड़ा उत्तेजक हो, उसे न खाना ही अच्छा है। केवल रसना की तृप्ति ही आहार का उद्देश्य तो नहीं है। आहार तो शरीर-धारण के लिए है। और शरीर-धारण का उद्देश्य है भगवत्-प्राप्ति। जो आहार मन को चंचल कर दे, मन को भगवन्मुखी न होने दे, उस सबका त्याग करना ही अच्छा है। और केवल आहार के संयम से ही ब्रह्मचर्य का पालन होता हो, सो बात भी नहीं। वास्तविक ब्रह्मचर्य तो है इन्द्रिय-संयम। जब तक यह नहीं होता, तब तक भगवदानन्द का लाभ तो बहुत दूर की बात है। इस तुच्छ रक्त-मांस की देह के आनन्द को छोड़े बिना भला उस ब्रह्मानन्द का लाभ क्या कभी भी सम्भव है? तुम लोग संसार-आश्रम में रहती हो। ठाकुर संसारी लोगों के लिए भगवत्प्राप्ति का मार्ग कितना सरल कर गए हैं! ठाकुर कहते थे कि दो-एक सन्तान होने के बाद पति-पत्नी भाई-बहन के समान रहें, देह के सम्बन्ध को भुलाकर परस्पर भगवत्प्रसंग करें, दोनों ही जैसे भगवान के सेवक हों। यह जीवन देह के सुख-भोग के लिए तो नहीं है? भगवान का लाभ करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य है। दुर्लभ मनुष्य-जन्म जब तुमने पाया है, तब जीवन को वृथा मत जाने देना। आत्मस्वरूप की उपलब्धि करो। ठाकुर ही

है तुम्हारी आत्मा; उनको प्राप्त करने की चेष्टा करो। वे केवल साढ़े तीन हाथ के मनुष्य ही तो नहीं हैं? वे स्वयं भगवान हैं, वे ही जीव की अन्तरात्मा हैं। उनको प्राप्त कर लेने पर भव-बन्धन सर्वदा के लिए कट जायगा, फिर इस संसार में बारम्बार आवागमन नहीं करना पड़ेगा। गीता में है—'यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।' * उसी परम पुरुष का लाभ करो, तभी जन्म-मरण की पहेली सदा के लिए सुलझ जायगी माई, और परमगति को पा सकोगी। उनको पाने पर ही समस्त कामना और वासनाओं की निवृत्ति होती है, मनुष्य पूर्ण हो जाता है, आत्मस्वरूप हो जाता है। 'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।' † "

स्त्री भक्त—"किस प्रकार उनको प्राप्त कर सकूँगी?"

महापुरुषजी—"माई, ठाकुर कहते थे कि तीन आकर्षणों के मिलकर एक हो जाने पर भगवान के दर्शन होते हैं: सती का पति पर, माँ का सन्तान पर और कृपण का धन पर जो आकर्षण होता है, इन तीनों आकर्षणों को मिलाकर एक करने से जितना आकर्षण होगा, उस आकर्षण के साथ यदि भगवान को पुकारा जाय, तो भगवत्प्राप्ति हो जाय। उनका नाम-कीर्तन करो, उनका ध्यान करो और खूब व्याकुल होकर प्रार्थना करो—'प्रभु, दर्शन दो, दर्शन दो।' रोओ, रोओ, खूब रोओ। तभी वे कृपा करके दर्शन देंगे। वे तो बड़े आश्रित-वत्सल हैं! जिसको उन्होंने आश्रय दिया है, उसका फिर कभी भी त्याग नहीं करते।"

* गीता—१५।६

† गीता—६।२२

## बेलुड़ मठ

**शनिवार, ७ दिसम्बर, १९२९**

प्रातःकाल का समय है। मठ के एक संन्यासी इस ठिठुरानेवाली शीत में कश्मीर गए हैं। उसी प्रसंग में महापुरुषजी ने कहा, "पे×× ऐसी शीत में कश्मीर गया है! सुना, हृषीकेश से पैदल ही गया है। इस समाचार के सुनते ही मन बड़ा चिन्तित हो गया है। ओहो! ठाकुर, रक्षा करो, तुम्हारा ही आश्रित है। मुझे लगता है कि कहीं उसका मस्तिष्क तो खराब नहीं हो गया; अन्यथा ऐसी बुद्धि क्यों होती? इस समय क्या कोई कश्मीर जाता है? (कुछ देर चुप रहकर) बच्चा, यह बड़ा कठिन पथ है। यह ब्रह्मविद्या बड़ी कठिन बात है। सभी की बुद्धि इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु की धारणा नहीं कर सकती। लौकिक विद्या सीखना सरल है; बड़ा दार्शनिक होना या बड़ा वैज्ञानिक होना, बड़ा कवि या बड़ा चित्रकार अथवा बड़ा राजनीतिज्ञ होना भी सरल है; किन्तु ब्रह्मज्ञान लाभ करना अत्यन्त कठिन काम है। इसीलिए तो उपनिषदकार कहते हैं—'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।'* जो इस मार्ग पर नहीं आते, वे यह धारणा तक नहीं कर सकते कि यह मार्ग कितना दुर्गम है। उपनिषदों में इस ब्रह्मविद्या को, जिसके द्वारा उस अक्षर पुरुष को जाना जाता है, 'परा विद्या' कहा है; और समस्त लौकिक विद्याओं को उपनिषद् 'अपरा विद्या' कहती है। इस परा विद्या का लाभ करने के लिए अटूट ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। तन-

---

* कठोपनिषद्—१।३।१४. ज्ञानी लोग कहते हैं कि छुरे की धार पर चलना जैसे अत्यन्त कठिन है, ब्रह्मज्ञान का मार्ग भी उसी प्रकार दुर्गम है।

मन-वचन द्वारा दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य-पालन करने पर उसके फलस्वरूप शरीर और मन में शुद्ध, पवित्र भगवद्भाव उदय होता है — ब्रह्मभाव को धारणा करने लायक शक्ति उत्पन्न होती है, मस्तिष्क में नूतन स्नायु की सृष्टि होती है, यहाँ तक कि शरीर के अन्तर्गत सब अणु-परमाणु तक बदल जाते है। अखण्ड ब्रह्मचर्य चाहिए। ठाकुर कहते थे कि दही के बरतन में दूध रखते डर लगता है कि कहीं दूध फट न जाय। इसी लिए तो वे शुद्धसत्त्व बालकों को इतना चाहते थे। ऐसे ही लोग भगवद्भाव को ठीक-ठीक धारण कर सकते हैं। यह सब अत्यन्त सूक्ष्म बात है। अवश्य, सर्वोपरि चाहिए — भगवत्कृपा। महामाया की विशेष कृपा हुए बिना यह सब कुछ भी होने का नहीं। वे कृपा करके यदि ब्रह्मविद्या का द्वार खोल दें, तभी जीव ब्रह्मविद्या का अधिकारी हो सकता है, अन्यथा नहीं। चण्डी में है—'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये,'— वे महामाया ही प्रसन्न होकर मनुष्यों को मुक्ति का वर प्रदान करती हैं। मस्तिष्क के भीतर कितनी सूक्ष्म स्नायु हैं। उनमें थोड़ा सा भी कुछ बिगड़ गया, तो बस — सब खतम ही समझो। श्रीश्रीमाँ कहती थीं — 'ठाकुर के पास प्रार्थना करना, जिससे मस्तिष्क ठीक रहे।' मस्तिष्क के बिगड़ जाने पर बस — फिर सब हो चुका। स्वामीजी ने कहा था — 'Shoot me if my brain goes wrong' (मेरा मस्तिष्क यदि बिगड़ जाय, तो मुझे गोली से उड़ा देना)। पे×× जब पहले-पहल मठ में आया, तभी उसके मस्तक का गढ़न देखकर मेरे मन में हुआ था कि इसका सिर कहीं फिर न जाय — वह कहीं पागल न हो जाय। सुना था कि हृषीकेश में किसी हठयोगी से वह हठयोग सीखता था। वह सब, बच्चा,

अच्छा नहीं है। इसके अतिरिक्त, वह बहुत दिनों से केवल बाहर-ही-बाहर घूम रहा था, मठ के साधुओं के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता था — जो मन में आता, वही करता था। अब देखो न, फिर फिसल बैठा है। महाराज * भी कहते थे कि प्रथम अवस्था में साधु का बिल्कुल अकेले रहना [illegible] नहीं है। कम-से-कम दो लोगों का एक साथ रहना अच्छा है। देखो न, इस प्रकार से क्या कभी तपस्या होती है? केवल हृषीकेश, उत्तरकाशी और पहाड़-जंगलों में घूमने-फिरने से ही क्या तपस्या हो गई?" कुछ देर तक चुप रहकर फिर बोले, "ठाकुर, रक्षा करो, तुम्हारे ही आश्रय में आया है। तुम नहीं बचाओगे, तो भला और कौन बचाएगा? अहा! बेचारा बड़ा अच्छा लड़का था।"

एक ब्रह्मचारी — "भागवत में उद्धव-गीता में कहा है कि साधक का साधन-मार्ग में अग्रसर होना बहुत कठिन काम है। देवता, ग्रह आदि, व्याधि, आत्मीय-स्वजन इत्यादि सब आकर अनेक प्रकार से साधन-भजन में अत्यन्त विघ्न उत्पन्न करते हैं।"

महापुरुषजी — "श्रीभगवान की कृपा होने से सभी विघ्न दूर हो जाते हैं; ठाकुर ठहरे कपालमोचन, उनका आश्रय लेने पर आधिभौतिक, आधिदैविक इत्यादि सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। चण्डी में है —

'रोगानशेषानपहंसि तुष्टा, रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां, त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥

अर्थात् 'उन महामाया के प्रसन्न होने पर सभी रोग नष्ट हो जाते हैं; फिर उनके रुष्ट हो जाने पर सभी वाञ्छित कामनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं; उनके आश्रितों को विपत्ति नहीं होती — वे लोग

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द।

भी प्रकार की विपत्तियों से मुक्त हो जाते हैं; और उनके महामाया के ) आश्रित और कृपाप्राप्त मनुष्यगण सभी जीवों आश्रय-स्थल हो जाते हैं — वे लोग ब्रह्मस्वरूप होकर सभी के धिष्ठानस्वरूप हो जाते हैं।' और चाहिए सत्संग — उसके द्वारा रुप्य की रक्षा होती है। 'सता संग'— महान् व्यक्तियों का ा विशेष आवश्यक है। हजार-हजार मनुष्य प्रयत्न करते हैं; न्तु केवल दो-एक को ही तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। महाराज एक भक्त ने पूछा था — 'भक्ति कैसे होती है?' उत्तर मे ाराज ने बारम्बार कहा था — 'सत्संग, सत्संग।' महापुरुषगण ावान के साथ परिचय करा देते हैं। सत्संग आवश्यक है बच्चा, संग आवश्यक है। सभी शास्त्रों ने सत्संग की बड़ी महिमा गाई है।"

ब्रह्मचारी — "रामायण में है — 'ऋषीणामग्निकल्पानाम्' ादि।"

महापुरुषजी — "ठीक कहते हो। श्रीरामचन्द्रजी रावण- के लिए अग्निकल्प ऋषियों का आशीर्वाद और वरदान प्राप्त राक्षसकुल के ध्वस के लिए आगे बढ़े थे।"

इसके बाद महापुरुष महाराज कुछ देर तक बार-बार तां संग' 'सतां संग' कहते रहे। अन्त में बोले, "फिर भी क्या है जानते हो? अन्य कुछ भी हो, पर महामाया की तक कृपा नही होती, तब तक कुछ भी नही होने का। वे न होकर यदि अपने राज्य के बाहर जाने दें, तभी रक्षा है। ाथा और कोई उपाय नहीं है। कृपा, कृपा, कृपा! आन्तरिक पर वे कृपा करती भी हैं।"

## बेलुड़ मठ

रविवार, ८ दिसम्बर, १९२९

प्रातःकाल का समय है। मठ के अनेक संन्यासी व ब्रह्मचारी महापुरुषजी के कमरे में एकत्रित हुए हैं। साधन-भ के सम्बन्ध में चर्चा हो रही है।

महापुरुषजी —"भगवान का नाम लेते-लेते, उनका भ करते-करते संयम आप ही आ जाता है। उनके नाम में ऐ शक्ति है कि उससे अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रिय सब संयत जाती हैं। पर नाम बड़े प्रेम के साथ लेना चाहिए। कि तरह यदि उन पर प्रीति हो गई, तो फिर बेड़ा पार ही समझ फिर कोई चिन्ता की बात नहीं—वह व्यक्ति शीघ्रातिशी उनकी ओर अग्रसर होता जायगा। वे अपने ही हैं—इ प्रकार का बोध यदि आ गया, तो डर की फिर कोई बात नहीं किन्तु जब तक मन निम्नभूमि में रहता है, तब तक भगवा पर ठीक-ठीक प्रेम होना सम्भव नहीं है। बहुत साधन-भज करते-करते, उनका नाम लेते-लेते जब कुल-कुण्डलिनी जाग्रत् हो जाती है और मन जब क्रमशः नीचे की तीन भूमियों को छोड़क चतुर्थ भूमि में अवस्थान करता है, तभी साधक को ईश्वरीय रूप आदि के दर्शन होते हैं तथा उनके ऊपर प्रीति उत्पन्न होत है। मन के शुद्ध हुए बिना उन 'शुद्धम् अपापविद्धम्' भगवान पर प्रेम कैसे होगा? उसके लिए चाहिए खूब साधन-भजन और व्याकुलता। तुम लोगों को होगा, शीघ्र ही होगा; क्योंकि तुम लोग बाल-ब्रह्मचारी हो, काम-कांचन का दाग तक तुम मन पर नहीं लगा है, तुम सब बहुत पवित्र आधार

हो। शुद्ध आधार में उनका प्रकाश शीघ्र होता है। थोड़ा सा ओर परिश्रम कर ही देखो न, होता है या नहीं। साधन-भजन को ही मुख्य कर्तव्य समझना; शेष जितने काम-काज हैं—व्याख्यान-वक्तृता, क्लास लेना आदि, इन सबको गौण समझना। एक ही स्थान पर, एक ही आसन पर बैठकर जप-ध्यान करना अच्छा है; उससे एक atmosphere (वातावरण) की सृष्टि होती है और मन के शीघ्र स्थिर होने में सहायता मिलती है। और मातृ-जाति को देखते ही श्रद्धा के साथ मन-ही-मन प्रणाम करना। हम लोगों के लिए ठाकुर की यही विशेष शिक्षा थी, और वे यह अपने जीवन में भी दिखा गए हैं। संन्यासी का जीवन मानो निर्जला एकादशी है। थोड़ा भी मालिन्य नहीं रहना चाहिए—निष्कलंक जीवन होना चाहिए। मन पर काम-कांचन का तिल मात्र भी दाग नही लगने देना चाहिए। सर्वदा उच्च विचार, भगवान का ध्यान, भजन, पाठ, प्रार्थना इन सबको लेकर ही रहना चाहिए। तुम लोगों का तो आध्यात्मिक जीवन है, दिव्य जीवन है। ठाकुर कहते थे—'मधुमक्खी फूल पर ही बैठती है—मधु का ही पान करती है।' सच्चे संन्यासी का जीवन मधुमक्खी के समान होना चाहिए। उसे केवल भगवदानन्द का ही मजा लेना चाहिए, अन्य किसी ओर मन को नही जाने देना चाहिए। तुम लोगों ने युगावतार की लीला को परिपुष्ट करने के लिए उनके पवित्र संघ का आश्रय लिया है। समग्र विश्व तृषित नयनों से तुम लोगों की ओर देख रहा है—ठाकुर का भाव पाने के लिए। हम लोगों के पार्थिव जीवन का तो अब अन्त होते आया। अब उस स्थान की पूर्ति तुम लोगों को करनी होगी। कितना बड़ा उत्तरदायित्व है तुम लोगों पर—एक बार जरा

सोच तो देखो ? ठाकुर समस्त शक्तियों के आधार हैं। वे आवश्यकतानुसार तुम लोगों के भीतर शक्ति-संचार कर देंगे — तुम लोगों को भी अपनी वाणी का, अपने भाव का प्रचार करने का अधिकारी बना देंगे। उनको अपने हृदय में जितना प्रतिष्ठित कर सकोगे, उतना ही यह अनुभव कर सकोगे कि वे अन्तर में रहकर तुम लोगों का हाथ पकड़े हुए हैं; वे स्वयं भगवान हैं और तुम लोग उन्हीं के आश्रित हो! वे ज्ञान, भक्ति, प्रेम, पवित्रता — सब देंगे, जीवन मधुमय कर देंगे।"

इसके पश्चात् ठाकुर के अवतारत्व और जीवों के दुःख निवारणार्थ उनके देह-धारण के सम्बन्ध में बातचीत चली। इस प्रसंग में एक संन्यासी ने पूछा, "महाराज, अवतार-पुरुषों को पूर्ण ज्ञान क्या बराबर बना रहता है?"

महापुरुषजी —"हाँ, इसमें सन्देह क्या! श्रीकृष्ण का जीवन ही देखो न — जन्म से ही उन्हें यह ज्ञान था कि वे भगवान हैं और इसका उन्होंने परिचय भी दिया है। यह अवश्य है कि सभी अवतारों में इन सब भावों की अभिव्यक्ति एक रूप से नहीं होती। किन्तु उन्हें उसका (अपने अवतारत्व का) ज्ञान पूर्ण रूप से रहता है। जगत् का आध्यात्मिक कल्याण करने के लिए ही तो भगवान की आध्यात्मिक शक्ति का आविर्भाव होता है — उनके समस्त कार्य-कलाप दयापूर्ण होते हैं। अवतार अन्य साधारण जीवों के समान कर्मफल के वशीभूत होकर तो जन्म-ग्रहण नहीं करते। फिर उनमें अज्ञान हो कहाँ से? पूर्णब्रह्मसनातन, मायाधीश माया का आश्रय लेकर जगत् में अवतीर्ण होते हैं और युग-प्रयोजन सिद्ध कर पुनः अपने स्वरूप में लीन हो जाते हैं। उन लोगों का साधन-भजन, कठोर

तपस्या आदि — सब लोक-शिक्षा के लिए, जगत् के सामने आदर्श दिखलाने के लिए होता है। वे तो ईश्वर हैं, पूर्ण हैं; उनमें फिर अपूर्णता कैसी? गीता में भगवान ने कहा है —

> 'न मे पार्थास्ति कर्तव्यं, त्रिषु लोकेषु किंचन।
> नानवाप्तमवाप्तव्यं, वर्त एव च कर्मणि॥'†

उन्हें कुछ भी अप्राप्त नहीं है, क्योंकि वे पूर्ण हैं; फिर भी लोक-शिक्षा के लिए वे कर्म में प्रवृत्त होते हैं। भगवान ने और भी कहा है —

> 'न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
> इति मां योऽभिजानाति, कर्मभिर्न स बध्यते॥'‡

उन्हें कर्मफल की कोई स्पृहा नहीं होती और कर्म भी उनको लिप्त नहीं कर सकता। यदि ऐसा न हो, तो उनका ईश्वरत्व — अवतारत्व कैसा? अवतारगण जब तक नर-देह धारण कर जगत् में रहते हैं, तब तक उनका सब व्यवहार आदि बाह्य दृष्टि से सामान्य मनुष्य के समान ही दिखाई देता है — सुख में सुखी, दुःख में दुःखी। यह सब देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो उनको पूर्ण ज्ञान सब समय नहीं रहता। किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। विशेष कर ठाकुर के जीवन में देखा जाता है कि ऐश्वर्य का विकास उनमें बिलकुल नहीं था — मानवीय भाव उनके जीवन में अधिक व्यक्त हुआ था। इस बार शुद्ध सत्त्व-भाव का अवतार था। इसी लिए तो उन्होंने कहा था — "यह मानो राजा छद्मवेष में नगर घूमने निकले हैं।' ठाकुर का यह

---

† गीता — ३।२२

‡ गीता — ४।१४

भाव समझना अत्यन्त कठिन है । देखो न, केशव बाबू * के देह-त्याग के बाद ठाकुर बहुत रोने लगे और कहने लगे —'केशव ने देह-त्याग किया है । मुझे ऐसा लगता है मानो मेरा एक अंग टूट गया । अब कलकत्ता जाने पर किसके साथ बातें करूँगा ?'— इत्यादि । जैसे मनुष्य आत्मीय-स्वजन के वियोग में शोक करता है — रोता है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने भी किया था । यही तो उनकी लीला है । इसकी धारणा करना बहुत कठिन बात है । अध्यात्म-रामायण में इस सम्बन्ध में बड़ी सुन्दर बात है — ज्ञान-भक्ति का कैसा सुन्दर सामंजस्य उसमें पाया जाता है ! रामचन्द्र स्वयं परब्रह्म थे — त्रिकालज्ञ थे । रावण के साथ-साथ समस्त राक्षसकुल का ध्वंस कर फिर से धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने नर-देह धारण की थी । रावण सीता का हरण करेगा, यह भी वे जानते थे । अध्यात्म-रामायण में ही है कि रावण जब भिक्षुक-वेष धारण कर सीता को हरने के लिए आया, तो उससे पहले ही रामचन्द्र ने सीता से कह दिया — 'हे जानकी, रावण भिक्षुक के वेष में तुम्हें हरने के लिए आएगा । तुम अपनी छाया-मूर्ति को कुटी में रखकर अग्नि में प्रवेश कर जाओ और उसी में अदृश्य रूप से एक वर्ष तक रहो । रावण-वध के बाद फिर मेरे साथ मिलन होगा ।' ऐसा कहकर उन्होंने सीता को अग्नि में प्रविष्ट कराया । और फिर सीता-हरण के बाद उन्होंने कैसा शोक दिखलाया ! आहार और निद्रा का त्याग कर दिन-रात रो रहे हैं और सीता की खोज में भटकते फिर रहे हैं ! वृक्ष-लता, पशु-पक्षी सबसे विलाप करते हुए सीता के बारे में पूछ रहे हैं ! शोक से 'हाय हाय' करते

---

* ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता श्री केशवचन्द्र सेन ।

हुए वन और जंगल के कोने-कोने में सीता को खोजते फिर रहे हैं! यह सब बड़े मजे का व्यापार है! वे सहज ही अपने को प्रकट करना नहीं चाहते।"

## बेलुड़ मठ

### सोमवार, ९ दिसम्बर, १९२९

एक वृद्ध संन्यासी ने प्रणाम करके कुशल-प्रश्न आदि पूछा। महापुरुष महाराज हँसते-हँसते पास ही में खड़े एक सेवक की ओर संकेत कर बोले, "शरीर कैसा है, यह इससे पूछो। मैं उतनी चिन्ता नहीं करता। शरीर है, यह ख्याल भी बहुधा नहीं रहता —शपथपूर्वक कहता हूँ। ये सब लोग पूछा करते हैं, इसी लिए उस समय जो मन में आता है, कह देता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं अपनी देह, मन, प्राण आदि सब कुछ उनके श्रीचरणों में समर्पित कर चुका हूँ — सब उन्हीं का है। अब उनकी जैसी इच्छा होगी, करेंगे। यदि इस शरीर को और भी रखने की उनकी इच्छा होगी, तो रखेंगे। अन्यथा जैसे ही बुलाएँगे, हम चल देंगे। मैं तो उनके बुलाने के लिए तैयार होकर बैठा हूँ। फिर भी, इस शरीर की किसी प्रकार की उपेक्षा नहीं करता। तुम लोग जैसा कहते हो, डाक्टर जैसा कहते हैं, उसी प्रकार चलने की चेष्टा करता हूँ। इस शरीर के लिए (सेवक की ओर देखकर) इन सबको भी कितना कष्ट देता हूँ। यह सब क्यों करता हूँ, जानते हो? यह शरीर साधारण शरीर के समान तो नहीं है? इसकी एक विशेषता है। इस शरीर में भगवान की उपलब्धि हुई है, इस शरीर ने

भगवान का स्पर्श किया है, उनके साथ रहा हूँ, उनकी सेवा की है। इस शरीर को वे अपने युगधर्म-प्रचार का यन्त्र बना चुके हैं। इसी लिए यह सब करता हूँ। अन्यथा केवल शरीर रक्त-मांस का एक पिंजर छोड़ और क्या है?

"ठाकुर मुझे अपनी सेवा आदि प्रायः नहीं करने देते थे। इससे कभी-कभी मुझे बड़ा दुःख होता था। वे क्यों वैसा करते थे, यह तो बाद में एक दिन की घटना से समझ पाया। उनके भाव को कौन समझ सकता है? एक दिन मैं दक्षिणेश्वर में था, और भी बहुत से भक्त थे। उनके कमरे में बैठकर अनेक वार्तालाप होने के बाद वे झाऊतला की ओर शौच के लिए गए। बहुधा, उनको शौच जाते देखकर उपस्थित भक्तों में से कोई एक उनका गडुआ लेकर जाता था और शौच आदि के बाद उनके हाथ पर गडुए से जल डाल देता था। वे प्रायः धातुनिर्मित किसी वस्तु का स्पर्श नहीं कर सकते थे। जो हो, उस दिन उन्हें शौच जाते देखकर मैं ही गडुआ लेकर झाऊतला की ओर गया। वे शौच आदि के बाद मुझे हाथ में गडुआ लिए खड़ा देखकर बोले, 'अरे, तू गडुआ लेकर क्यों आ गया? तेरे हाथ से जल मैं कैसे लूँगा? तेरी सेवा मैं कैसे ले सकता हूँ? तेरे पिता के प्रति तो मैं गुरु के समान श्रद्धा रखता हूँ।' उनकी बात सुनकर मैं तो अवाक् रह गया। तब समझा कि वे क्यों अपनी सब प्रकार की सेवा मुझे नहीं करने देते। ठाकुर तो थे अनन्त भावमय, उनके भाव को हम लोग भला क्या समझेंगे? वे दया करके जितना समझा दें, मनुष्य उतना ही समझ सकता है।"

बाद में दीक्षा आदि की बात उठी। उस पर महापुरुषजी

बोले, "नहीं, दीक्षा देते मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, वरन् आनन्द ही होता है। भक्तगण आते हैं, उनको ठाकुर का नाम दे देता हूँ, उनके साथ ठाकुर की कथावार्ता करता हूँ। मेरे दीक्षा देने में कोई पुरोहिती नहीं है। मैं कोई अधिक तन्त्र-मन्त्र नहीं जानता, और जानने की कोई आवश्यकता भी नहीं मालूम होती। ठाकुर को जानता हूँ — वे ही सब कुछ हैं! नाम भी उन्हीं का और शक्ति भी उन्हीं की। उनकी इच्छा से उन्हीं का नाम सबको देता हूँ, और प्रार्थना करता हूँ —'ठाकुर, तुम इन सबको ग्रहण करो; इनको भक्ति-विश्वास दो, दया करो।' और वे सबके हृदय में भक्ति-विश्वास देते भी हैं। मेरे तो ठाकुर ही सर्वस्व हैं।—

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥' *

जो जैसी प्रार्थना करता है, उसे वे उसी प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चतुर्वर्ग फल देते हैं। ठाकुर का यही तो माहात्म्य है — उनका नाम लेने से शान्ति मिलती है, उनकी सेवा करने से शान्ति मिलती है, उनका चिन्तन करने से शान्ति मिलती है। वे हैं युगावतार, इसी लिए यह सब होता है—और होगा ही। फिर उनकी आकर्षण शक्ति भी ऐसी है कि लोग अपने आप ही उनकी ओर आकृष्ट होंगे — वे लोग किसी भी सम्प्रदाय के भले ही हों।"

* हे देवदेव, तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्हीं मेरे पिता हो, तुम्हीं बन्धु हो, तुम्हीं सखा हो, तुम्हीं विद्या हो, तुम्हीं ऐश्वर्य हो, तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो।

## बेलुड़ मठ

### बुधवार, १८ दिसम्बर, १९२९

दक्षिण भारत और लंका के प्रसंग में महापुरुष महाराज कहने लगे, "हाँ, लंका गया था न। स्वामीजी ने भारत लौट आने पर कुछ महीने के बाद मुझे वहाँ वेदान्त-प्रचार के लिए भेजा था। मैं सात-आठ महीने कोलम्बो में था। नियमित रूप से गीता-क्लास और धर्म-चर्चा आदि करता था; बहुत से लोग आते थे। वहाँ अच्छी तरह था। वहाँ के प्रसिद्ध मन्दिर आदि भी सब घूम-घामकर देखे। बुद्धदेव का एक दन्तमन्दिर है — कहते हैं, वहाँ पर बुद्धदेव का एक दाँत रखा हुआ है। कैसा विराट् व्यापार उन लोगों ने किया है! मन्दिर देखने से चकित हो जाना पड़ता है। जब स्वामीजी अमेरिका से मद्रास आए, तो मैं उनसे मिलने के लिए सीधा मद्रास ही चला गया था। इसके पूर्व भी मैं एक बार रामेश्वर आदि तीर्थों के दर्शन करने के लिए उस प्रदेश में गया था और दक्षिण भारत के लगभग समस्त प्रसिद्ध तीर्थस्थानों के दर्शन किए थे। इन सब विराट् मन्दिरों को देखने पर बड़ी अच्छी तरह समझा जा सकता है कि भारतवासी कितने धर्म-प्राण हैं। उनके कार्य-कलाप, उनके आनन्द-संभोग — सब भगवान को लेकर ही हैं। भगवद्-भक्त अनेक भावों से श्रीभगवान की सेवा करना चाहते हैं, उसी में उन्हें आनन्द और तृप्ति होती है।"

संन्यासी — "लंका आपको कैसी लगी थी, महाराज?"

महापुरुषजी — "मुझे सभी स्थान अच्छे लगते हैं। मुझे कभी भी किसी स्थान में असन्तोष नहीं हुआ। जब जिस स्थान

मे रहता हूँ, बड़े आनन्द से रहता हूँ। भगवान को लेकर रहने पर सभी स्थानों में आनन्द है। हाँ, लंका और दक्षिण भारत बड़े अच्छे लगे थे।"

संन्यासी —"महाराज, बचपन में आपका नाम तारकनाथ जो रखा गया था, उसका क्या कोई विशेष कारण था?"

महापुरुषजी —"हाँ, सुना है कि बहुत दिनों तक सन्तान न होने पर माताजी और पिताजी ने बाबा तारकेश्वर की मनौती मानी थी और एक पुत्र के लिए प्रार्थना की थी। बाबा तारकेश्वर ने माँ को स्वप्न में दर्शन देकर कहा था कि उनके एक सुपुत्र होगा। उसके बाद ही मेरा जन्म हुआ था, इसलिए मेरा नाम तारकनाथ रखा गया। मेरी माँ वामासुन्दरी अत्यन्त धर्मपरायण और लक्ष्मीस्वरूप थी; देखने मे भी बड़ी सुन्दरी थी। बचपन मे मैंने धर्मभाव उन्ही के निकट प्राप्त किया था। पिताजी भी बड़े धार्मिक थे। उनकी आय भी यथेष्ट थी। पचीस-तीस गरीब बालकों को पिताजी अपने घर में रखकर भोजन-वस्त्र देते थे। वे सभी बारासत स्कूल में पढ़ते थे। मैं भी उन्हीं लोगों के साथ रहता था। माँ अपने हाथ से रसोई बनाकर सबको खिलाती थी। पिताजी रसोई पकाने के लिए रसोइया रखना चाहते, परन्तु माताजी नही रखने देती थी। वे कहती थीं —'यह तो मेरा अहोभाग्य है, जो इतने बच्चों को रसोई बनाकर खिलाती हूँ।' मैंने माता का कोई विशेष दुलार-स्नेह नही पाया। वे काम-काज में सर्वदा व्यस्त रहती थी। उन पचीस-तीस लड़कों में मै भी एक था। मेरे लिए अलग भोजन कुछ भी नही बनाती थी; उन . मैं भी खाता था। इस पर कोई-कोई .

थोड़ी भी दया-ममता नहीं है।' तब माँ कहतीं —' उनका तारक है, मेरा नहीं। उन्होंने दया करके दिया है — वे ही उसको देखेंगे।' जब मेरी आयु अनुमान दो वर्ष की थी, उस समय माँ का स्वर्गवास हो गया। माँ के सम्बन्ध में विशेष कुछ स्मरण नहीं है। मेरे पिता कन्हाई चोसार अत्यन्त धार्मिक गुणी एवं भक्त थे। रात में, 'माँ, तूने यह क्या किया, इतना पर अभी भी मेरी कृपा नहीं हुई' — यह सब कहते हुए ज़ोर ज़ोर से रोते थे।

"माँ तो लक्ष्मी थीं। उनके निधन के साथ-साथ पिताजी की आय भी धीरे-धीरे कम होने लगी। वे अनेक दान आदि करते थे। परन्तु आय में कमी हो जाने के कारण वे पहले-जैसा दान आदि अब नहीं कर पाते थे। मैं अत्यन्त भाग्यवान हूँ, जो ऐसे माता-पिता के घर में जन्म लिया। माता-पिता अच्छे हों, तो सन्तान भी अच्छी होती है। पिताजी का त्याग बहुत था। उन्होंने इतने रुपयों का रोजगार किया था, किन्तु अपने रहने के लिए एक अच्छा सा मकान भी नहीं बनवाया। सब रुपए दीन-दुःखियों की सेवा में लग गए। पिताजी तान्त्रिक साधक थे। उनके पास सामान्य से एक साधक पुरोहित आए थे। उनका कैसा सुन्दर चेहरा था! छोटा कद, उज्ज्वल रक्तवर्ण। सारी रात दोनों साधक बहुत पूजा आदि करते थे। घर में ही पंचमुण्डी का आसन था। एक बार पूजा के समय घट-स्थापन करके उसके ऊपर एक हरा नारियल रखा गया था। उसी हरे नारियल से एक बड़ा नारियल का पेड़ हो गया था — छत के बराबर ऊँचा।"

## बेलुड़ मठ

### बुधवार, २५ दिसम्बर, १९२९

कल रात मठ में 'क्रिसमस ईव्' (बड़े दिन) का उत्सव बड़े आनन्द और समारोह के साथ मनाया गया। नीचे के बैठकखाने में, 'मेरी की गोद में ईसा' के चित्र को पत्र-पुष्प और माला आदि से बड़े सुन्दर ढंग से सजाया गया था और अनेक तरह के फल, मिठाई-केक आदि का भोग निवेदित किया गया था। मठ के साधु-ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त अनेक भक्त भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। बाइबिल से ईसा के जन्म और उपदेश आदि पाठ करने के बाद कुछ वृद्ध संन्यासियों ने ईसा के पवित्र जीवन और उपदेश के सम्बन्ध में सुन्दर व्याख्यान दिए। महापुरुष महाराज स्वयं नीचे आकर इस उत्सव में सहयोग नहीं दे सके; किन्तु उन्होंने उत्सव की एक-एक बात की जानकारी प्राप्त की और सब सुनकर बड़ा आनन्द प्रकट किया।

प्रातःकाल मठ के साधु-ब्रह्मचारीगण महापुरुषजी के कमरे में एकत्रित हो रहे हैं। वे प्रसन्नमुख से 'Happy Christmas' (शुभ बड़ा दिन) कहकर सबकी अभ्यर्थना कर रहे हैं। गत रात्रि के 'बड़े दिन' के उत्सव के प्रसंग में बोले, "यह उत्सव हमारे यहाँ वराहनगर मठ से ही चला आ रहा है। ठाकुर के शरीर-त्याग के कुछ महीने बाद बाबूराम महाराज* की माँ ने अपने ग्राम आँटपुर में कुछ दिनों तक आकर रहने के लिए हम लोगों को निमन्त्रण भेजा। उस समय हम लोगों के हृदय में तीव्र वैराग्य था; ठाकुर के विरह में सबके मन-प्राण व्याकुल थे। सभी

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी प्रेमानन्द।

कठोर साधन-भजन में रत थे। दिन-रात प्रत्येक समय यही
मात्र चिन्ता थी कि किस प्रकार भगवान का लाभ होगा,
प्रकार प्राणों में शान्ति आएगी। आँटपुर जाकर हम लोग
साधन-भजन करने लगे। धुनी जलाकर, सारी रात धुनी के
बैठकर जप-ध्यान में बिता देते थे। स्वामीजी हम लोगों के
त्याग-वैराग्य आदि की चर्चा खूब किया करते थे। कभी उपनि
तो कभी गीता और कभी भागवत पढ़ाते थे और उनकी मीम
आदि करते थे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। एक रात
लोग धुनी के पास बैठकर ध्यान कर रहे थे, बहुत समय तक ध्य
करने के बाद एकाएक स्वामीजी मानो भावाविष्ट होकर
मसीह के जीवन के सम्बन्ध में तन्मय होकर कहने लगे। ईसा
कठोर साधना, ज्वलन्त त्याग-वैराग्य, उनके उपदेश और सर्वोप
भगवान के साथ उनकी एकत्वानुभूति इत्यादि घटनाओं का ओ
पूर्ण वाणी में ऐसे सुन्दर ढंग से वर्णन करने लगे कि हम स
सभी चकित हो गए। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो साक्ष
ईसा ही स्वामीजी के मुख से अपनी अलौकिक जीवन-गाथा
लोगों को सुना रहे हैं। यह सब सुनते-सुनते हम लोगों के हृ
में एक अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत उमड़ने लगा; और
में केवल यही होता रहा कि जिस प्रकार भी हो, पहले भगव
का लाभ करना होगा, उनके साथ एक हो जाना होगा — अ
संसार की शेष सब वस्तुएँ तो निःसार हैं। स्वामीजी जब जि
विषय पर बोलते थे, तब उसे पराकाष्ठा तक पहुँचा देते थे। ब
में मालूम हुआ कि वह दिन 'बड़ा दिन' था, उससे पहले यह
कोई जानता भी नहीं था। तब लगा कि हो न हो, ईसा ने
[illegible] के भीतर आविर्भूत होकर हमारे त्याग-वैराग्य अ

भगवत्प्राप्ति की आकांक्षा को और भी तीव्र करने के लिए अपनी महिमामण्डित जीवनी और अपने उपदेश हम लोगों को सुनाए थे। आँटपुर में रहने के समय ही हम लोगों के भीतर संन्यासी होकर संघबद्ध-रूप से रहने का संकल्प दृढ़ हुआ। ठाकुर तो हम लोगों को संन्यासी बनाकर गए ही थे; वही भाव और भी परिपक्व हुआ आँटपुर में। ईसा थे संन्यासियों के राजा, त्याग की ज्वलन्त मूर्ति। आदर्श संन्यासी हुए बिना उनका अद्‌भुत अलौकिक जीवन और उपदेश समझना बहुत कठिन है। हमने ठाकुर को देखा है, उनका पवित्र संग लाभ किया है; इसी लिए उनको (ईसा को) कुछ-कुछ समझ सकते हैं। परन्तु साधारण मनुष्य उनको कैसे समझेगा? यही क्या, ईसा के दल के लोग भी उन्हें यथार्थतः नहीं समझ सके हैं—विशेषतः आजकल के पादरी लोग तो उन्हें बिलकुल ही नहीं समझ सकते। उनके जीवन का वास्तविक वैशिष्ट्य कहाँ है, यह वे पकड़ ही नहीं सकते। क्योंकि आजकल ईसाई धर्म-प्रचारकों में से अधिकांश के भीतर उस त्याग-तपस्या, विवेक-वैराग्य और मुमुक्षुत्व का अभाव-सा हो गया है। भारतवासी, धर्म क्या वस्तु है सो जानते हैं और किस प्रकार धर्म-जीवन बिताना पड़ता है यह भी जानते हैं। इसी लिए देखो न, भारतवर्ष में इधर डेढ़ सौ वर्ष के भीतर ईसाई-धर्म के प्रचार का क्या फल हुआ है?—कुछ भी नहीं। कितने व्यक्तियों ने उन लोगों के प्रचार के फल से वास्तविक धर्म-जीवन लाभ किया है? त्याग, वैराग्य, पवित्रता—ये ही तो धर्म-जीवन की भित्ति है। स्वयं ईसा ने ही कहा है—'Blessed are the pure in heart, for they shall see God' (पवित्रात्मा ही धन्य है, क्योंकि वे भगवान के दर्शन

कर सकेंगे)। यह seeing God (भगवान के दर्शन करना) ही धर्म-जीवन का लक्ष्य है। सो न होकर केवल एक बहुत बड़ा संघ बना लेना, दल के करोड़ों आदमियों का नाम रजिस्टर में लिख लेना—इससे धर्म-जगत् में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं होता। राज-नीतिक व्यापार में इन सबका महत्व हो सकता है, परन्तु धर्म-राज्य में नहीं। स्वामीजी ने कहा था—'अधिक क्या, दस मनुष्यों को भी यदि सच्चा आध्यात्मिक जीवन दान दे सकूँ, तो समझूँगा कि मेरा कार्य सार्थक हुआ है।' उनके इस कथन का यथार्थ तात्पर्य यह है कि धर्म-जीवन लाभ करना अत्यन्त कठिन बात है। भगवान का लाभ या ब्रह्मानुभूति ही धर्म-जीवन है—'Religion is realisation' (प्रत्यक्षानुभूति ही धर्म है)। ईसाई पादरियों में बहुत बड़े-बड़े मेधावी पुरुष हैं, वे खूब अध्ययन आदि करते हैं, उनका पाण्डित्य प्रगाढ़ है; किन्तु इसके साथ-ही-साथ यदि उनमें ईसा-उपदिष्ट त्याग-तपस्या भी होती, तो ठीक होता!

"तुम लोग ठाकुर के इस पवित्र संघ में आए हो, त्यागी-श्वर ठाकुर को अपने जीवन का आदर्श बनाया है और उस आदर्श को सम्मुख रखकर अपने जीवन का गठन कर रहे हो; तुम लोगों का कल्याण होगा, तुम लोग उस ब्रह्मानन्द के अधिकारी होगे — इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। यह संघ जब तक त्याग, वैराग्य और तपस्या आदि के द्वारा एकमात्र भगवान के लाभ को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य जानकर, उस ओर लक्ष्य रखकर, सर्वभावमय ठाकुर के जीवन को आदर्श बनाकर अग्रसर होता रहेगा, तब तक इस संघ की आध्यात्मिक शक्ति निश्चय ही अक्षुण्ण बनी रहेगी। काम-काज, प्रतिष्ठा आदि बढ़ाना तो

सरल बात है। किन्तु एकमात्र भगवान का लाभ करने के लिए तपोनिष्ठ होकर समग्र जीवन समान रूप से बिता देना अत्यन्त कठिन है। स्वामीजी ने कहा है —'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च — यही हमारा motto (अनुसरणीय वाणी) होगा।' पहले आत्मज्ञान का लाभ, उसके बाद जगत् का हित। ठाकुर भी अपने जीवन में यही करके दिखा गए हैं और स्वामीजी आदि सब अन्तरंग शिष्यों को भी यही उपदेश दे गए हैं। स्वामीजी इस संघ में जो सेवा आदि कार्यों का प्रवर्तन कर गए हैं, उन सभी कार्यों को दैनिक साधन-भजन के साथ करना होगा — साधन-भजन का अंग मानकर। तभी कार्य ठीक-ठीक होगा। ऐसा न करके यदि कोई केवल कर्म-स्रोत में अपने आपको डाल दे, तो उसका अन्त तक वजन सँभाले रहना मुश्किल ही है। अधिकतर कार्य की सफलता देखकर कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। वह, किन्तु, अच्छा नहीं; उससे अन्त तक जीवन का उद्देश्य भूल जाता है और सब कुछ मिट्टी में मिल जाता है। ठाकुर के समीप हम लोगों ने भगवत्प्रसंग छोड़ और कोई बात ही नहीं सुनी। उनकी यही एकमात्र वाणी थी, यही एकमात्र उपदेश था —'किसी भी तरह हो, पहले भगवान का लाभ कर ले।'"

एक संन्यासी —"महाराज, ठाकुर तो सिद्धियों को आध्यात्मिक उन्नति का बाधक कह गए हैं; किन्तु ईसा की जीवनी तो अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण दिखाई देती है। उन्होंने मृत व्यक्ति को फिर से जीवित कर दिया, रोगों को दूर कर दिया तथा और भी अनेक प्रकार के अलौकिक कार्य किए। अपने बारह शिष्यों के भीतर शक्ति-संचार करके उन्होंने उन

हमारे पश्चिमी देशों में, 'बड़े दिन' के उपलक्ष्य में आमोद-प्रमोद, खाना-पीना, वेश-भूषा, नाच-गाना — यही सब अधिक होता है और सारा देश इसी में डूबा हुआ मत्त रहता है। पूजा-पाठ जो होता है, सो सब अधिकतर नियमबद्ध निर्दिष्ट क्रम के अनुसार होता है। उसमें आन्तरिकता का तो नितान्त अभाव-सा रहता है। आमोद-प्रमोद में ही करोड़ों रुपए खर्च हो जाते हैं। *उन सब बाह्य आडम्बरों से हृदय तृप्त नहीं होता;* इसी लिए गत वर्ष 'बड़े दिन' की रात में लगभग एक बजे ईसा के समीप बड़े कातर भाव से प्रार्थना की थी, 'प्रभु! दया करके मेरे जीवन में कम-से-कम एक बार ही सही, ठीक-ठीक 'बड़े दिन' का आनन्द प्राप्त करा दो।' उन्होंने मेरी प्रार्थना सुनी है। इस बार यहां पर मैंने ठीक-ठीक 'बड़े दिन' का आनन्द पाया है; मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया है।"

महापुरुषजी —"हम लोगों की है भक्ति की पूजा। यहाँ का 'बड़े दिन' का उत्सव सात्त्विक उत्सव है। प्रेम, भक्ति, विश्वास, आन्तरिक प्रार्थना — यही सब है इस उत्सव का प्रधान अंग। यही है वास्तविक 'बड़ा दिन'।"

महिला भक्त —"प्रभु (ईसा) क्या वास्तविक यहूदी थे?"

महापुरुषजी —"वे यहूदी भी नहीं थे और जेन्टाइल भी नहीं थे। वे थे इन सबमें बहुत ऊँचे स्तर के — भगवान की शक्ति के अवतार। जीवों की रक्षा करने के लिए नर-देह धारण कर ... में अवतीर्ण हुए थे।"

## बेलुड़ मठ
### रविवार, २ फरवरी, १९३०

अपराह्न काल। आज रविवार होने के कारण मठ में बहुत से भक्तगण आए हैं। महापुरुष महाराज का कमरा भक्तों से भरा हुआ है। वे भी बड़े आनन्दपूर्वक सबके साथ बातचीत कर रहे हैं। एक भक्त ने भक्तिपूर्वक प्रणाम करके पूछा, "आप कैसे हैं, महाराज ?"

महाराज —"बहुत अच्छा हूँ।"

भक्त—(कातर भाव से)—"किन्तु आपका शरीर देखने से तो ऐसा नहीं जान पड़ता। शरीर तो बहुत अस्वस्थ दीख पड़ता है।"

महाराज —"ओह, तुम शरीर की बात पूछते हो ? हाँ, शरीर बिलकुल ठीक नहीं है। किन्तु मैं मजे में हूँ। यह पाँच लोगों के साथ ईश्वरीय कथा-प्रसंग हो रहा है, भगवान का नाम हो रहा है, यह सब लेकर बड़े आनन्द में हूँ। 'जब तक राम नाम लेती हूँ, तब तक जानकी अच्छी है।' जब तक मुख से राम-नाम उच्चारण हो सके, तब तक तो कहना पड़ेगा —'अच्छा ही हूँ'। देह-धारण का उद्देश्य ही है भगवान का नाम लेना। अतः वह कर सकने से ही बस हो गया। हरि महाराज† एक बात कहा करते थे, 'दुःख जाने शरीर जाने, मन तुमि आनन्दे थाको।'* यह बड़ी सुन्दर बात है! दुःख-कष्ट तो देह का

† भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी तुरीयानन्द।

* दुःख की बात शरीर जाने; ऐ मेरे मन, तुम तो सदा आनन्द में रहो।

हैं। और देह के भीतर जो हैं, उन्हें दुःख-कष्ट कुछ भी नहीं, वे तो आनन्दस्वरूप हैं। प्रत्येक देह के भीतर ही वे विराजमान हैं। वे ही प्रत्येक का स्वरूप हैं। उसी स्वरूप की अनुभूति करनी होगी। उनको न जान पाने के कारण ही तो इतनी गड़बड़ी है।"

भक्त — "महाराज, हम लोग इतना तो समझ नहीं पाते। हम तो आपको ही देखते हैं। आपका स्वास्थ्य अच्छा रहे, यही हम चाहते हैं।"

महाराज — "तुम लोग यह चाह रखते हो, किन्तु मैं जानता हूँ कि मैं शरीर नहीं हूँ, और तुम लोगों के साथ जो सम्बन्ध है, यह देह का सम्बन्ध नहीं। देह के नाश होने पर भी यह सम्बन्ध नष्ट नहीं होने का। वरना, यह देह तो दो दिन की है, किन्तु आत्मा नित्य है और उस आत्मा का सम्बन्ध भी नित्य है। कितनी ही चेष्टा क्यों न करो, यह देह चिरकाल तक किसी प्रकार नहीं रह सकती। राममोहन राय ने एक बड़ी सुन्दर बात कही थी —

'यत्ने तृण काष्ठखण्ड रहे युग परिमाण,
किन्तु यत्ने देहनाश ना हय वारण,
तुमि कार, के तोमार, कारे बोलोरे आपन।' *

यह अज्ञान दूर करना पड़ेगा। मनुष्य अज्ञान के वशीभूत हो, देह को 'मैं' समझने के कारण ही इतने सब कष्ट पाता है। इन कष्टों

* यदि तृण या लकड़ी के टुकड़ को यत्नपूर्वक रखा जाय, तो वह एक युग तक सुरक्षित रह सकता है। पर इस देह को कितना भी यत्नपूर्वक रखो, इसका नाश अवश्यम्भावी है। (फिर भला) तुम किसके हो? कौन तुम्हारा है? तुम किसे अपना कह सकते हो?

से बचने का एकमात्र उपाय क्या है जानते हो? उपाय है —एकमात्र उनको जानना। वे शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं — सभी की अन्तरात्मा हैं। उन्हे जानने पर मनुष्य दुःख-कष्ट से परे चला जाता है। इसी लिए तो गीता में श्रीभगवान ने कहा है कि उन्हें एक बार ठीक-ठीक जान लेने पर फिर जीव को महा-दुःख भी विचलित नहीं कर सकता। इस तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होने पर मनुष्य सब अवस्थाओं में सुमेरु के समान अटल अचल रह सकता है।"

भक्त —"महाराज, किस प्रकार यह तत्त्वज्ञान प्राप्त किया जाय? आप आशीर्वाद दीजिए कि हमें यह अवस्था प्राप्त हो।"

यह प्रश्न सुनकर महापुरुष महाराज का मन मानो किसी दूसरे राज्य में चला गया। वे बड़े गम्भीर और शान्त भाव से कहने लगे, "हम लोगों के पास तो, बच्चा, सिवाय आशीर्वाद के और कुछ नहीं! हम लोग तो बहुत आशीर्वाद दे रहे हैं। उनकी ओर कोई आगे बढ़ रहा है यह देखकर हमारे हृदय में जो आनन्द होता है, वह किस प्रकार कहूँ। जो उनके राज्य की ओर आगे बढ़ता है, जो उन्हें आन्तरिक भाव से भजता है, वह तो हमारा परम आत्मीय है, सोलह आने अपना आदमी है। हम लोग तो निरन्तर यही प्रार्थना करते हैं कि लोगों का कल्याण हो, लोग श्रीभगवान की ओर आगे बढ़ सकें। हमारी एकमात्र चेष्टा यही है कि लोग इस अनित्य संसार की माया को काटकर उनको प्राप्त कर सकें। ठाकुर कहते थे, 'कृपा की हवा तो चल ही रही है, केवल तू पाल उठा दे।' श्रीभगवान की कृपा तो सदा है ही, किन्तु उस कृपा को पाने के लिए चेष्टा

करनी पड़ेगी । हम लोग तो आशीर्वाद देते ही हैं, तुम
भी व्याकुल होकर उनको पुकारो । देखोगे, उनकी कितनी
है ! वे तो कृपा करने के लिए सदैव ही हाथ बढ़ाए बैठे
उनका नाम जपो, उनका भजन करो, सर्वदा उनका स्म
मनन करो, खूब आन्तरिक भाव से उन्हें पुकारो । देखं
उनकी इतनी कृपा होगी कि सँभाल न पाओगे, तुम्हारा मान
जीवन धन्य हो जायगा । उनकी कृपा के बिना कुछ नहीं ह
का । वे ही तो अपनी माया द्वारा जगत् को मोहित किए ह
हैं । इसी लिए सदा प्रार्थना करनी चाहिए, 'हे प्रभु, अप
भुवनमोहिनी माया में भुलाए न रखो । अपने श्रीचरणकमल
में शुद्धा भक्ति दो । मेरा मानव-जीवन धन्य हो जाय ।' य
वे हमारी ओर कृपा-दृष्टि न फेरें, तो भला किसकी सामर्थ्य
जो उनकी माया को हटा सके ! चण्डी में है, 'सैषा प्रसन्न
वरदा नृणां भवति मुक्तये'—अर्थात् वे ही (जगन्माता) प्रार्थन
आदि द्वारा प्रसन्न होकर मनुष्यों को मुक्ति के लिए वर प्रदान
करती हैं । तभी जीव मायामुक्त होकर शिवत्व प्राप्त करता
है । उनकी दया के बिना इस माया के बन्धन को काटना बड़ा
कठिन है । पर यह भी सत्य है कि कोई यदि व्याकुल होकर
आन्तरिक प्रार्थना करता है, तो वे उस पुकार को सुन लेते हैं
और अपनी माया का आवरण हटा देते हैं । तुम लोग संसार में
रहते हो, तुम्हारी प्रार्थना वे और भी अधिक सुनेंगे । संसारियों
के ऊपर उनकी विशेष कृपा रहती है, क्योंकि वे जानते हैं कि
तुम लोगों के सिर पर कितना भार लदा हुआ है । संसार के
दुःख-कष्टों में तुम लोग जल-भुन रहे हो । अतएव तुम लोगों
की थोड़ी सी प्रार्थना से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं और शीघ्र ही

आकर सिर का भार उतार देते हैं। पर हाँ, प्रार्थना आन्तरिक होनी चाहिए। वैसे, सांसारिक काम-काज तो लगे ही हुए हैं। यह सृष्टि जितने दिन है, उतने दिन काम-काज भी रहेंगे। किन्तु इसी के बीच थोड़ा समय निकालकर एकान्त में उन्हें पुकारना चाहिए। नहीं तो बड़ी मुश्किल है — बड़ी विपत्ति में पड़ोगे। उनकी शरण लेकर संसार में व्यस्त रहने मे उतना डर नहीं। समस्त कार्य करते हुए भी उनका स्मरण-मनन करना, उनका चिन्तन करना बहुत आवश्यक है। एक हाथ से उनके श्रीपादपद्म सदैव पकड़े रहो और दूसरे से संसार के काम-काज करते रहो। और जब काम-काज निपट जाय, तब दोनों हाथों से उनके श्रीचरण पकड़कर हृदय से लगा लेना।"

## बेलुड़ मठ

### जनवरी-मार्च, १९३०

एक भक्त मठ में अपना शेष सम्पूर्ण जीवन अर्पित करने की इच्छा से अपने कर्मस्थान को छोड़कर मठ मे कुछ दिनों से रह रहे हैं। महापुरुषजी ने उनसे कहा, "वे लोग (स्वजन-सम्बन्धी) जान पाए है कि तुम अब नही जाओगे?"

भक्त — "जी हाँ।"

महापुरुषजी — "यह ठीक हुआ! उन लोगों को भोग-वासना है — खूब भोग करें। ठाकुर की कृपा से तुम्हारी भोग-वासना कट गई है; तुम अब यहीं रहो। वे लोग आमड़े की खटाई खायें — जब तक उनकी इच्छा हो।"

* * * *

श्रीश्रीठाकुर का साधारण उत्सव है। आकाश मेघाच्छन्न है; कुछ वृष्टि भी हो गई है। उत्सव का विराट् आयोजन हो चुका है। एक सेवक ने आकर कहा, "महाराज, आज्ञा हो तो आपको कुर्सी पर बिठाकर हम लोग नीचे ले चलें—कृपया उत्सव की तैयारी देखिए।"

महापुरुषजी—"नहीं, I don't like to create a scene (मैं कोई तमाशा खड़ा करना नहीं चाहता)। सभी को बहुत आनन्द, भक्ति, प्रीति और शान्ति हो। ठाकुर सर्वसाधारण का कल्याण करें—उसी में मुझे आनन्द है। ठाकुर की इच्छा से मेघ और वृष्टि होने से गर्मी कम हो गई है; नहीं तो लोगों को बहुत कष्ट होता। अपना काम वे स्वयं सँभाल लेंगे।"

अपराह्न के समय गायों के बारे में पूछ-ताछ रहे हैं, "ओह, मालूम होता है आज वे सब बाहर नहीं निकल सकेंगी! उनको बड़ा कष्ट होगा।" सन्ध्या समय फिर गायों की पूछ-ताछ की—उनको चारा दिया गया है या नहीं। सेवक ने पता लगाकर, आकर कहा, "हाँ, दिया है।" महापुरुषजी को यह सुनकर बड़ा आनन्द हुआ।

*　　*　　*　　*

पूर्व बंगाल की एक महिला की बात चली। महिला खूब साधन-भजन करती हैं और बड़ी उन्नत अवस्था लाभ कर चुकी हैं। महापुरुषजी ने इस प्रसंग में कहा, "यह सब उनकी कृपा है। देवीसूक्त में है—'यं कामये तमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्' (मैं जिसे चाहती हूँ, उसे सर्वश्रेष्ठ कर देती हूँ; ब्रह्मा बना देती हूँ, ऋषि बना देती हूँ, प्रज्ञाशाली बना देती हूँ)। उनकी कृपा ही असल है—फिर चाहे कोई पुरुष हो अथवा स्त्री।"

## वेलुड़ मठ

### अप्रैल-सितम्बर, १९३०

आज रामनवमी है। गोस्वामी तुलसीदास का प्रसंग चल रहा है। महापुरुषजी बोले, "तुलसीदास खूब नाम-प्रचार कर गए हैं। नाम और नामी एक ही वस्तु हैं। हरिनाम — रामनाम। तुलसीदास कितने बड़े भक्त थे! आज खूब राम नाम जपो। राम राम सीताराम।"

एक संन्यासी गले की माला के साथ बँधी एक तावीज में श्रीश्रीठाकुर की चरण-रज धारण किए हुए हैं। महापुरुष महाराज उनसे बोले, "दो, मुझे दो। यह तो धारण करनी ही चाहिए। दो, मेरे सिर पर लगा दो।"

स्वास्थ्य के बारे में पूछने पर उन्होंने कहा, "शरीर इस समय अस्वस्थ हो गया है; बस और कुछ नहीं। ठाकुर की जब तक इच्छा है, तब तक बनाए रखे हैं, और बनाए रखेंगे। शरीर रहने पर उनके शुभ कार्यों का थोड़ा-बहुत प्रसार होता है— इतना ही, और क्या!"

एक साधु अपने माता-पिता आदि से मिल-जुलकर लौटे हैं। वहाँ पर लगभग एक हजार लोग उनको देखने आए थे। महापुरुषजी इस प्रसंग में कह रहे हैं, "यह अच्छा हुआ, उन लोगों ने एक संन्यासी के दर्शन किए। अच्छा ही होगा। सच्चा संन्यासी होना अत्यन्त कठिन है।" फिर साधु को आशीर्वाद देते हुए कह रहे हैं, "तुम्हें खूब शुद्धा भक्ति हो, शुद्ध ज्ञान हो! दोनों ही एक हैं।"

एक स्त्री भक्त ने आत्महत्या की है। यही बात सेवक के साथ हो रही है।

महापुरुषजी —"सुना, अफीम खाकर मरी है? असह्य रोग-यन्त्रणा के कारण उसने ऐसा किया है। पर उसकी आत्मा ठीक ठाकुर के पास जायगी। ठाकुर की भक्त थी; मठ के ऊपर, साधुओं के ऊपर, हम लोगों के ऊपर उसका बड़ा स्नेह था। प्रारब्ध था, इसलिए आत्महत्या की है। अवश्य सद्गति होगी। पर कुछ दिनों तक अन्धकार-सदृश आवरण के भीतर रहना होगा।"

एक पारसी भक्त का पत्र आया है। महापुरुष महाराज ने सेवक से कहा, "उसे स्पष्ट करके लिख दो कि वह जो करता है, सो ठीक ही करता है। जरतुश्त-रूप में ठाकुर ही आए थे। और वे जरतुश्त ही ठाकुर-रूप में आए हैं।"

बाद में एक प्रासियन यहूदी सज्जन के प्रसंग में कहा, "वह वैज्ञानिक है। युद्ध के समय क्या एक खाने की चीज का आविष्कार किया था — पकाने का काम नहीं। कहता था — 'इच्छा करता, तो करोड़ों रुपए पैदा कर लेता।' बहुत अच्छा आदमी है। पहले वह अडयार में थियोसाफिकल सोसाइटी में आया था। उसे यहूदी धर्म अच्छा नहीं लगता। थियोसाफी भी उसे पसन्द नहीं आई। उसके बाद मद्रास 'स्टूडेन्ट्स् होम'* में आया था। फिर मठ (बेलुड़) में आया था — दर्शन करने के लिए। पैलेस्टाइन, जेरुसलम यह सब देखने गया था। उसे वह सब अच्छा नहीं लगा। कहने लगा — 'नहीं, वहाँ धर्मभाव है ही नहीं।' इस समय वह अमेरिका में है।"

* श्रीरामकृष्ण मिशन का मद्रास-स्थित विद्यार्थी-गृह।

अमेरिका को कई चिट्ठियाँ लिखने की हैं। यही चर्चा हो रही है। वे बोले, "यह सब चिट्ठी-पत्र लिखने से प्रीति का भाव प्रकाशित होता है। यह अवश्य है कि अन्तश्चक्षु खुल जाने पर सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म दृष्टिगोचर होता है —'एकत्व-मनुपश्यतः केन कं विजानीमात्' (जो एकत्व देखते हैं, वे भिन्न रूप से फिर किसको देखेंगे)? फिर भी, बाहर में इस अनेकत्व-बुद्धि प्रसूत प्रेम-भाव के आदान-प्रदान की आवश्यकता रहती ही है।"

ढाका के दंगे की बात चली। महापुरुषजी ने कहा, "माँ ने ऐसा क्यों किया? ठाकुर का ही भरोसा है — वे रक्षा करेंगे। ढाका में कभी भी इतना नहीं हुआ। माँ की ध्वंस-लीला चल रही है। 'Out of evil cometh good' (अशुभ से शुभ होता है)। इससे भी कल्याण होगा। वे दया करें, सभी को शान्ति दें। किसी का भी अनिष्ट न हो, यही चाहता हूँ।"

एक साधु लगभग एक मास से कठिन बीमारी के कारण बिस्तर से लग गए थे, पर अब अच्छे हो गए हैं और ऊपर महापुरुष महाराज को प्रणाम करने आए हैं। महापुरुषजी उन्हें देखकर आनन्दित हुए और कहने लगे, "आओ, आओ! — अरे, न×× ऊपर आया है! अच्छा हुआ बच्चा, आओ, आओ। ठाकुर की कृपा से नीरोग हो गए — ठाकुर ने तुम्हे चंगा कर दिया। जय ठाकुर! तुम लोगों को कोई चिन्ता नहीं। तुम लोगों पर ठाकुर दया करेंगे। तुम लोगों ने अपना सब कुछ ठाकुर को अर्पित कर दिया है, उनका आश्रय लिया है; वे तुम लोगों की रक्षा करेंगे। स्वास्थ्य-लाभ, ज्ञान, भक्ति, मुक्ति सब पर ठाकुर ध्यान रखेंगे। अच्छा, अब जाओ बच्चा, अधिक देर

खड़े न रहो, इससे कष्ट होगा। अरे! चेहरा कैसा पीला। गया है! फिर से खाने-पीने पर रक्त आ जायगा। जय ठाकुर खूब रक्षा की है!"

मठ के विस्तृत मैदान से कटीला घास उखाड़ा जा रह है। ऊपर दफ्तर के कमरे की खिड़की से देखकर महापुरुष बोले, "अच्छा, अच्छा, मैदान साफ हो रहा है; गाएँ अ घास खा सकेंगी और तुम लोगों को आशीर्वाद देंगी।"

और एक दिन की घटना। एक भक्त का पत्र आया है कह रहे हैं, "ठाकुर का नाम यथाशक्ति लेता है। जिसे नाम में रुचि हो — इतना करने से ही बच जायगा। नाम में प्रीति होने पर फिर कोई चिन्ता की बात नहीं। झंझट तो लगे ही रहते हैं और लगे भी रहेंगे। ठाकुर का नाम खूब ले, तभी कल्याण होगा। जन्माष्टमी के दिन तीन बजे रात तक उसने पूजा की थी — वाह, बड़ी सुन्दर बात है!"

महापुरुष महाराज लेटे हुए हैं। लेटे-लेटे ही उन्होंने देवी की नामावली, वेदान्त का वाक्यसग्रह एवं देवी-सूक्त का पाठ किया। उसके बाद उठकर बोले, "क्या खूब! क्या खूब! बड़ी सुन्दर-सुन्दर बातें मन में आ रही थीं। शिव स्थिर होकर पड़े हैं और माँ उनके ऊपर नाच रही हैं। शिव तो चिरकाल से ही स्थिर हैं; और माँ का नाच भी चिरकाल से चल रहा है। भीतर तो बराबर स्थिर है और बाहर यह लीलामयी की लीला चल रही है।"

एक ब्रह्मचारी ने एक दिन पूछा, "ज्ञान की ओर जब अधिक झुकाव हो, तब इष्ट-मन्त्र का जप न करके केवल ओंकार का ही जप करने से क्या हो सकता है, महाराज?"

महापुरुषजी —"हाँ, ठीक तो है। वह ओंकार ही तो भगवान है। ठाकुर का ओंकार-भाव से ध्यान किया जा सकता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं।"

कुछ दिन के बाद उस ब्रह्मचारी से उन्होंने पूछा, "क्या, ओंकार-जप करते हो?" ब्रह्मचारी के "हाँ" कहने पर उन्होंने उसे खूब उत्साहित करते हुए कहा, "वाह, बहुत अच्छा!" तब ब्रह्मचारी ने कहा, "किन्तु महाराज, ओंकार-जप करते-करते शरीर के जकड़ जाने पर बहुत भय होता है।"

महापुरुषजी —"ऐसा जब हो, तब उनके पास प्रार्थना करना —'हे ठाकुर, तुम्हीं ओंकार-स्वरूप हो। मैं जिससे ठीक पथ पर जा सकूँ, वैसा ही करो। जिससे ठीक वस्तु — उसी ज्ञान या भक्ति (दोनों एक ही हैं)— का लाभ कर सकूँ, वैसा ही कर दो।' इस प्रकार खूब प्रार्थना करना।"

एक साधु को कठिन पीड़ा हुई है। महापुरुषजी ने अपने एक सेवक से कहा, "मेरी बहुत इच्छा हो रही है कि उसे एक बार देख आऊँ। कुर्सी में बैठाकर दो आदमी मुझे नीचे ले चलोगे? रोगी के पास जाने से बड़ा उपकार होता है। सहानुभूति आवश्यक है। पाँच लोगों की सहानुभूति से रोग अच्छा हो जाता है।"

एक सेवक अस्वस्थ हो गए हैं। उनके स्थान पर एक साधु दो दिन से रात्रि को दो घण्टा महापुरुषजी को पंखा झला करते हैं। तीसरे दिन महापुरुषजी ने उनसे कहा, "तुम्हें बहुत कष्ट होगा — रहने दो, आवश्यकता नहीं है।" तब साधु बोले, "नहीं, महाराज, इसमें भला क्या कष्ट! आपकी सेवा किए बिना हमारा कल्याण कैसे होगा?"

महापुरुषजी —"हाँ, सो तो ठीक ही कहते हो। ह
ठहरे वृद्ध साधु, और ठाकुर के दास; हम लोगों की सेवा कर
से कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं।"

एक बार मठ के एक संन्यासी ने अत्यन्त व्याकुल होक
महापुरुष महाराज से पूछा, "महाराज, क्या केवल चित्र में ह
ठाकुर को सदा देखते रहना होगा? हम लोगों को क्या को
उपलब्धि नहीं होगी?" महापुरुषजी तुरन्त बहुत आश्वासन दे
हुए उनसे बोले, "नहीं, नहीं, चित्र में क्यों? (अपना हृद
दिखलाकर) यहाँ पर साक्षात् जीवन्त मूर्ति की उपलब्धि होगी।"

आज जन्माष्टमी है। एक संन्यासी ने महापुरुषजी से
पूछा, "क्या ठाकुर को जन्माष्टमी के दिन कोई विशेष भाव
होता था?"

महापुरुषजी —"वह सब क्या स्मरण रहता है? उन्हें
तो थोड़ा कुछ होने से ही भाव हो जाता था। 'वचनामृत' में
उसका थोड़ा सा आभास पाया जाता है। और वह भी तो
असम्पूर्ण है। मास्टर महाशय * प्रत्येक दिन तो जाते नहीं थे,
और जो कुछ उन्होंने सुना, सो भी सब क्या वे लिख सके हैं?
यह अवश्य है कि उनकी स्मृति-शक्ति बड़ी तीक्ष्ण थी। फिर भी,
सुनकर कितना लिखा जा सकता है?"

संन्यासी —"स्वामीजी की यह इच्छा थी कि ठाकुर ने
अपने अन्तरंग शिष्यों में से प्रत्येक को जो विशेष-विशेष उपदेश
दिए थे, उन सबको प्रत्येक के पास से संग्रह करके रखा जाय।"

---

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग गृही भक्त श्रीयुत महेन्द्रनाथ
गुप्त 'म'—बंगविख्यात 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' के संकलन-कर्ता।

महापुरुषजी —"सो अब कैसे हो सकता है? उनमें से तो अधिकांश अब हैं ही नहीं।"

सन्ध्या समय एक भक्त से महापुरुष महाराज ने कहा, "जाओ, आरती देखो। बेलुड़ मठ में ठाकुर साक्षात् विराजमान हैं। स्वयं स्वामीजी उन्हें यहाँ स्थापित कर गए हैं। यह सत्य समझना।"

एक दिन पुजारी महाराज के प्रणाम करते ही महापुरुष महाराज भावस्थ हो "जय गुरु महाराज, जय गुरु महाराज" बोल उठे। कुछ देर बाद पुजारी की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा, "यह बहुत अच्छा है, तुम ठाकुर की पूजा करते हो। तुम्हे बहुत भक्ति-विश्वास हो। पूजा के अन्त में इस प्रकार प्रार्थना करना —'ठाकुर, तुम अपनी पूजा कृपा करके मुझसे करा लो। मैं तुम्हारी पूजा क्या जानूँ?' जो-जो यहाँ पर ठाकुर की सेवा आदि कर रहे हैं, सभी का परम कल्याण होगा। बहुत से कहते हैं —'ठाकुर तो सभी स्थानों मे हैं।' हाँ, सत्य है; किन्तु इस स्थान (मठ) में उनका विशेष प्रकाश है। स्वयं स्वामीजी उन्हें — उस आत्माराम के पात्र * को — यहाँ पर स्थापित कर गए हैं।"

और एक दिन उक्त पुजारी साधु से उन्होंने पूछा, "अपराह्न में पूजा-घर खोलकर कुछ जप-ध्यान करते हो न?"

पुजारी —"जी हाँ, महाराज।"

महापुरुषजी —"हाँ, सर्वदा वहाँ पर एक भाव-धारा प्रवाहित रखनी होगी। पूजा-घर में जाने पर ऐसा लगना

---

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव की अस्थियाँ जिस पात्र में रखी हुई हैं उसे स्वामी विवेकानन्द 'आत्माराम का पात्र' कहा करते थे।

चाहिए मानो साक्षात् भगवान के पास आया हूँ। वे भक्ति और भक्त को चाहते हैं। वैसा न हो, तो सगुण ईश्वर क्या? केवल थोड़ा सा ध्यान किया — उससे कुछ होने का नहीं। भक्ति चाहिए। दोनों ही चाहिए।"

प्रातःकाल महापुरुष महाराज के कमरे में बहुत से साधु उपस्थित हैं। माला-जप की बात चली। महापुरुषजी बोले, "जिनकी बुद्धि मोटी है, वे कहते हैं — जितनी अधिक संख्या में जप करेंगे, उतनी अधिक उनकी कृपा होगी। किन्तु भगवान क्या संख्या देखते हैं? वे तो देखते हैं कि उनकी ओर हृदय कितना आकृष्ट हुआ। भाव यदि अच्छा जम जाय, तो संख्या रखने की कोई आवश्यकता नहीं।"

एक साधु — "हाँ, माला-जप करना भी अनेक समय विक्षेप-जैसा मालूम होता है।"

महापुरुषजी — "हाँ, सो तो है ही। मैं तो माला-फाला जपता नहीं। तुलसीदास ने कहा है — 'माला जपे साला।' फिर भी, एक रख लेना पड़ता है — साधु है यह दिखाना तो होगा (हास्य)। वह देखो, (दीवाल पर टँगी अपनी तस्वीर में झूलती माला दिखलाकर) एक रख ली है। जपना तो होता नहीं। वही (चित्र) जपता है (हास्य)। ठाकुर कहते थे — पहले जप, उसके बाद ध्यान, फिर भाव, समाधि इत्यादि।"

सन्ध्या समय महापुरुष महाराज ऊपर गंगाजी की ओर के बरामदे में टहल रहे हैं। बरामदे की एक ओर पूजनीय खोका महाराज * आराम कुर्सी पर बैठे भागवत पढ़ रहे हैं। महापुरुषजी

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी सुबोधानन्द।

खोका महाराज की ओर देखकर एक व्यक्ति से बोले, "खोका महाराज भागवत खूब पढ़ रहे हैं।"

सेवक —"जी हाँ, उन्होने और भी पुराण आदि पढ़े हैं। शिवपुराण भी पढ़ा है।"

खोका महाराज —"हाँ, कुछ तो लेकर रहना चाहिए।"

महापुरुषजी —"कुछ क्यो? भागवत क्या कम है? भागवत, पुराण आदि में तो उस सत्य का ही वर्णन है।"

सन्ध्या हो चुकी है। इस बरामदे से पूर्णिमा के आलोक में आलोकित गगाजी को देखकर महापुरुष महाराज हाथ जोड़कर बोले, "जय माँ, जय माँ! भक्ति दो गंगे!"

महापुरुषजी का रक्त-चाप ( Blood Pressure ) बढ़ गया है। डाक्टरों ने अधिक बातचीत करने का निषेध किया है। वही बात जब एक सेवक ने महापुरुषजी से कही, तो वे बोले, "मै रामकृष्ण का चेला हूँ। वे इतनी कैन्सर रोग की यन्त्रणा रहने पर भी जो कोई आता था, उसके लिए कितनी चिन्ता, उसके साथ कितनी बातचीत आदि करते थे। और मैं चुप होकर बैठा रहूँगा? शरीर अस्वस्थ है, तो क्या किया जाय? तुम लोग आकर केवल प्रणाम करके यदि चले जाओ, तो तुम्हीं लोग भला क्या सोचोगे? सोचोगे —' रामकृष्ण का चेला इस प्रकार का!'"

## बेलुड़ मठ

### शुक्रवार, ९ मई, १९३०

रात में एक दक्षिण देशीय संन्यासी ने आकर महापुरुष

महाराज को प्रणाम किया और अपने हृदय की वेदना प्रकट करते हुए कहा, "महाराज, मैं भगवान को सर्वभूतों में देखना चाहता हूँ। यह कैसे सम्भव हो सकता है, कृपा करके आप मुझे बतलाइए।"

महापुरुषजी —"बच्चा, पहले अपने हृदय में भगवान के दर्शन करने होंगे। अन्तर में उनके दर्शन हुए बिना बाहर सर्वभूतों में उनके दर्शन कैसे सम्भव हैं? आत्मानुभूति में पूर्ण दृढ़ भाव से प्रतिष्ठित होने पर अन्तर बाहर सर्वत्र उनके दर्शन होते हैं; तभी 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्' यह अवस्था प्राप्त होती है।"

संन्यासी —"सत्य भाषण, सर्वभूतों के प्रति दया और प्रेम, निर्विकार चित्त से सब दुःख सहना इत्यादि नैतिक गुणों को जीवन में ढाल लेने पर क्या उस अवस्था में पहुँचा जा सकता है?"

महापुरुषजी —"हाँ, नैतिक चरित्र के गठन से चित्त शुद्ध होता है और उसी शुद्ध चित्त में धीरे-धीरे भगवद्भाव का स्फुरण होता है। किन्तु केवल उत्तम नैतिक चरित्र होने से ही भगवद्दर्शन होगा, सो तो मैं नहीं मानता। निरन्तर उनका ध्यान करते रहने पर वे कृपा करके भक्त के हृदय में प्रकट होते हैं। उनका ध्यान चाहिए — सर्वदा उनका स्मरण-मनन चाहिए। सत्यस्वरूप, विभु, प्रेममय, सर्व-शक्तिमान, चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द का चिन्तन करते-करते मनुष्य क्रमशः सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है। येन केन प्रकारेण एक बार भगवान को हृदय में प्रतिष्ठित कर सकने से ही सब हुआ समझो। फिर अलग नैतिक चरित्र के गठन की आवश्यकता नहीं रह जाती। सत्य, दया, प्रेम ये सब सद्वृत्तियाँ तब अपने आप ही आ जाती हैं। ठाकुर

कहते थे —'बाप जिस लड़के का हाथ पकड़कर चलता है, उस लड़के के गिरने का भय फिर नहीं रहता।' वास्तविक बात क्या है जानते हो, बच्चा? कृपा, कृपा। वे कृपा करके यदि दर्शन दें, तभी मनुष्य उनके दर्शन पा सकता है। साधन-भजन यह सब तो मन को भगवन्मुखी बनाने का उपाय मात्र है।"

यह कहकर महापुरुषजी मधुर कण्ठ से गाने लगे —

'तुमि नाहि दिले देखा, के तोमाय देखिते पाय।
तुमि ना डाकिले काछे सहजे कि चित धाय?
तुमि पूर्ण-परात्पर, तुमि अगम्य अपार।
ओहे नाथ, साध्य कार ध्याननेते धरे तोमाय॥
मनेरे बुझाइ कतो, तुमि वाक्यमनातीत।
तबु प्राण व्याकुलित, तोमारे देखिते चाय॥
दिये दीने दरशन, करोहे दुःख मोचन।
ओहे लज्जानिवारण, शीतल करो हृदय॥'*

बड़े तन्मय होकर गाना गाने के बाद धीरे-धीरे बोले, "ठाकुर कहते थे, 'कृपा-समीर तो बह ही रहा है, तू अपना पाल उठा दे न।' यह पाल उठाने का अर्थ है पुरुषकार — साधन-भजन। पहले अपने आपको भगवत्कृपा की उपलब्धि के योग्य बनाना होगा — साधन-भजन द्वारा। शेष उनकी कृपा। निरन्तर उनका

---

* तुम यदि दर्शन न दो, तो तुम्हे कौन देख सकता है? तुम यदि अपने समीप न बुलाओ, तो चित्त क्या सहज ही तुम्हारी ओर दौड़ सकता है? तुम पूर्ण हो, परात्पर हो, अगम्य और अपार हो। हे नाथ, किसकी सामर्थ्य है, जो तुम्हें ध्यान में पकड़ सके? मैं मन को कितना समझाता हूँ कि तुम मन और वाणी के अगोचर हो, फिर भी मेरे प्राण तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हैं। हे लाजनिवारण प्रभो, इस दीन को दर्शन देकर दुःखों का नाश कर दो और हृदय शीतल कर दो।

स्मरण-मनन, उनका ध्यान करते-करते मन-प्राण शुद्ध हो जाते हैं; और इस शुद्ध मन में अपने आप ही भगवद्भाव का स्फुरण होता है, भगवत्कृपा प्रकट होती है। फिर तुम लोग तो साधु हुए हो, सब कुछ छोड़-छाड़कर उनका आश्रय लिया है, भगवान का लाभ करना ही तुम लोगों के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। तुम लोगों को तो सब समय उन्हें लेकर ही रहना होगा। ठाकुर की वाणी में है न कि मधुमक्खी फूल पर ही बैठती है — मधु का ही पान करती है? उसी प्रकार तुम लोग भी सोते, स्वप्न देखते, जागते, सब अवस्थाओं में भगवान को लेकर ही विलास करना। उनका ध्यान, उनका नाम-जप, उनका स्मरण-मनन, उनका विषय-पाठ, चर्चा, उनके समीप प्रार्थना — यह सब लेकर ही तुम लोगों को रहना होगा। तभी जीवन में सच्चा आनन्द और शान्ति पाओगे और तभी उनके आश्रय में आना भी सार्थक होगा। भगवान हैं अन्तर्यामी। जहाँ आन्तरिक व्याकुलता होती है, वहाँ उनकी कृपा भी होती है। उनके राज्य में अन्धेर, अन्याय नहीं।"

### बेलुड़ मठ
#### शुक्रवार, २३ मई, १९३०

ज्येष्ठ मास है, गर्मी कड़ाके की पड़ने लगी है। महापुरुषजी को रात्रि में प्रायः नींद नहीं आती। प्रातःकाल शरीर स्वस्थ नहीं रहता, अतः बिस्तर पर बैठे-ही-बैठे सबके साथ बातचीत करते हैं। जलपान करके ऊपर थोड़ा टहल रहे हैं। चलने में कष्ट होता है, फिर भी थोड़ा अभ्यास बनाए रखने की चेष्टा कर

रहे हैं। कुछ क्षण बाद ही थककर एक कुर्सी पर बैठ गए। तत्पश्चात् अपने कमरे की ओर आ रहे हैं—थोड़ा विश्राम करेंगे। धीरे-धीरे चल रहे हैं और पास में जो लोग हैं, उनसे हँसते-हँसते कह रहे हैं, "थप थप थप !" अपनी खाट पर आकर बैठ गए और कहने लगे, "देखो न, शरीर की कैसी अवस्था हो गई है। दो कदम चलना, वह भी नहीं कर पाता, बिलकुल invalid (बेकाम) बना दिया है। सब कुछ महामाया का खेल हैं। यही शरीर पहाड़ों पर कितना चढ़ा-उतरा है, कितना पैदल घूमा है, कितनी सब कठोरताएँ सह चुका है। और अब देखो, तो दो कदम चलने में भी कष्ट होता है ! नीचे उतरना तो कई दिन से बन्द हो गया है। पहले कितना घूमा हूँ, कितने स्थानों पर गया हूँ। ठाकुर की इच्छा से घूमना बहुत हुआ है; अब कहीं और जाने की इच्छा भी नहीं होती। कहीं आने-जाने की इच्छा ही ठाकुर ने मिटा दी है। अब और कोई वासना नहीं। जिस अवस्था में ठाकुर रखें, उसी में आनन्द है। बाहरी activity (क्रिया) जितनी कम हो रही है, अन्दर की activity उतनी ही बढ़ती जा रही है। बहिर्जगत् से मन जितना उठता जा रहा है, उतना ही वह भीतर की ओर आगे बढ़ रहा है। और ठाकुर कृपा करके उस वस्तु को दिखाए दे रहे हैं, जो देह, मन और बुद्धि के अतीत है। इस समय प्राणशक्ति की क्रिया भीतर खूब हो रही है। शास्त्र में जिन अनुभूतियों की चर्चा है, उन सबकी स्पष्ट उपलब्धि प्रभु कृपा करके करा दे रहे हैं। मैं तो शरीर नहीं। मैं जो षड्विकार है, वे तो देह के हैं। मैं तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव वही सनातन परमपुरुष हूँ। ठाकुर ने कृपा कर यह ज्ञान बहुत पक्का कर दिया है। इसी लिए देह की

स्वस्थता-अस्वस्थता, जरा-व्याधि कुछ भी मन में नहीं आती। शरीर का धर्म शरीर तो करेगा ही। आगे जो सब ज्ञान और अनुभूति यत्न और चेष्टापूर्वक करनी पड़ती थी, वह सब अब बिना किसी चेष्टा के ही हो रही है। ठाकुर कृपा कर वे सब उच्च-उच्च अनुभूति करा दे रहे हैं। उस अमृतधाम के मार्ग को उन्होंने कृपा करके साफ कर दिया है। देश, काल, पात्र — ये सब तो बाहरी चीजें हैं। मन जब समाहित हो जाता है, तब इन सबका कुछ ज्ञान नहीं रहता। पहले जब अलमोड़ा की ओर रहता था, तब हिमालय के अनेक मनोरम स्थानों में घूमा फिरा। वे सब स्थान सचमुच में साधन-भजन के बहुत अनुकूल हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य भी अनुपम है। उन सब स्थानों पर भी ध्यान करते-करते देखा है कि मन जब थोड़ा भी अन्तर्मुखी होने लगता है, तो फिर लता-वृक्ष, पहाड़-जंगल, गर्मी-सर्दी इन सबका बोध नहीं रहता। शरीर है या नहीं, जब यही ज्ञान नहीं रहता, तो फिर अन्य बाह्य वस्तुओं की तो बात ही क्या! अनन्त सौन्दर्य के मूल कारण उन प्रेमास्पद भगवान के श्रीचरणों में मन जब एक बार लीन हो जाता है, तब इन सब बाह्य सौन्दर्यों में फिर क्या मन कभी लगता है — ये क्या फिर आनन्द देते हैं? उस भूमानन्द का एक बार आस्वादन कर लेने पर ये सब सांसारिक आनन्द अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। 'यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखम्'† — 'जो भूमा है, अर्थात् जो अनन्त है, उसी में सुख है; अल्प में सुख नहीं। भूमा ही सुख है।' उसी विराट् भगवान के एक अंश से इस जगत् की — चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा और भी

† छान्दोग्य उपनिषद् — ७।२३।१

कितने लोकों की सृष्टि हुई है,— शेष अंश तो अव्यक्त हैं —
'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'‡ उन्हें कोई
कभी जान नहीं सका और जान सकेगा भी नहीं। मनुष्य क्षुद्र
मन-बुद्धि द्वारा भला उस विराट् भगवान को किस प्रकार
जानेगा? इसी लिए तो भगवान गीता में कहते हैं—

'अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥'*

—'अथवा हे अर्जुन, इन सब असंख्य वस्तुओं के जानने से
तुम्हारा क्या लाभ? एक शब्द में कहा जाय, तो मैं ही इस
समस्त जगत् को अपने एक अंश द्वारा धारण किए हुए विद्यमान
हूँ।' 'एकांशेन'— इस एक अंश में ही क्या-क्या है, यही तो
मनुष्य जान नहीं पाता, फिर अन्य सब तो दूर की बात है।
यह अवश्य है कि आजकल पाश्चात्य विज्ञान की उन्नति के साथ-
साथ अनेक नए तत्त्व आविष्कृत हो रहे हैं। वैज्ञानिक लोग
गम्भीर गवेषणा द्वारा नए-नए यन्त्र आविष्कृत कर कितने ही
नए ग्रह; नए नक्षत्र इत्यादि का अनुसन्धान कर रहे हैं। किन्तु
अभी भी ऐसी ढेर वस्तुएँ हैं, जिनको जानने में वैज्ञानिकों की
बुद्धि चकरा रही है। फिर, यन्त्र की सहायता से उन्होंने जो
देखा है, वह भूलरहित ही हो, ऐसी बात तो नहीं। दस वर्ष
पहले जिन्होंने एक प्रकार से कहा था, दस वर्ष बाद फिर वे ही
मत बदल डालते हैं। इसी लिए तो ठाकुर ने कहा था, 'माँ,
मैं तुम्हें जानना नहीं चाहता। तुम्हें भला कौन कब जान सका
है या जान सकेगा? बस इतनी कृपा करो कि तुम्हारी भुवन-

‡ ऋग्वेद — १०।९०
* गीता — १०।४२

मोहिनी माया में मुग्ध न हो जाऊँ। मुझे अपने श्रीपादपद्मों में शुद्धा भक्ति दो।' जीवन का उद्देश्य भी यही है — जैसे भी हो, उनके श्रीपादपद्मों में मन लगाए रखना। एक बार यदि उनके श्रीपादपद्मों में मन लय हो जाय, तो फिर भय की कोई बात नहीं।—

> 'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
> यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥'*

और वह शुद्धा भक्ति, वह शुद्ध ज्ञान उनकी कृपा बिना होने का भी नहीं। पर वे कृपा करके दे भी देते हैं। आन्तरिक भाव से शरणागत हो पड़े रहने पर वे अवश्य ही दया करते हैं। सारी दुनिया ही क्यों न घूमते फिरो, सारे तीर्थों की यात्रा क्यों न करो, किन्तु उनकी कृपा बिना कुछ भी होने का नहीं। इसीलिए तो जब लड़के इधर-उधर जाने की जिद पकड़ते हैं, तो उनसे कहता हूँ, 'बच्चो, इधर-उधर कहाँ घूमते फिरोगे? शरणागत होकर ठाकुर के द्वार पर पड़े रहो, और कुछ नहीं करना पड़ेगा। केवल आन्तरिक शरणागति ही आवश्यक है।' हम लोग भी सब शरणागत होकर पड़े हैं। हम लोगों को उन्होंने कृपा करके बहुत दिया है, और भी दे रहे हैं। मैं आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ, तुम सब लोगों को यही पूर्ण ज्ञान, पूर्ण भक्ति लाभ हो। (आँखें मूँदकर, दोनों हाथ उठाकर) 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।'†।"

---

* गीता — ६।२२

† गीता — १।३१

## बेलुड़ मठ

### मंगलवार, २४ जून, १९३०

महापुरुषजी बहुत तन्मयतापूर्वक गा रहे हैं —

"श्यामा माँ कि कल करेछे ! काली माँ कि कल करेछे !
चौद्दो पोया कलेर भितर कतो रंग देखातेछे।
आपनि थाकि कलेर भितरि, कल घुराय धरे कलडुरि।
कल बोले आपनि घुरि जाने ना के घुरातेछे॥" • इत्यादि।

यह गाना बार-बार गाकर वे चुप हो गए। बाद में
न-ही-मन कहने लगे, "हम जानते हैं माँ ही सत्य है, माँ दयामयी
और कुछ' नहीं जानते, कुछ नहीं समझते, जानने की
वश्यकता भी नहीं है।"

एक ब्रह्मचारी साधन-भजन में उन्नति नहीं कर सक रहा
। उसने अपनी मनोदशा और अशान्ति महापुरुषजी के समीप
कट की और उनसे आशीर्वाद की याचना करने लगा। इस
र महापुरुषजी जोर देते हुए बोले, "माँ तुम पर बहुत कृपा
रें, तुम्हारे मन की सभी अशान्ति दूर कर दें। बच्चा, पड़े
ो उनके द्वार पर। वे धीरे-धीरे सब ठीक कर देंगी। कुछ भी
, हताश मत होना। खूब आर्त होकर उनका नाम लेना,
र आन्तरिक प्रार्थना करना, 'ठाकुर, तुम दया करो। मैं
यन्त अबोध हूँ, तुम्हें किस प्रकार पुकारूँ सो भी नहीं जानता।

---

• माँ श्यामा ने कैसी कल बनाई है ! माँ काली ने कैसी कल बनाई
इस साढ़े तीन हाथ की कल के भीतर वह कितने रंग दिखा रही
वह स्वयं तो कल के भीतर रहती है और कल की डोरी पकड़ उसे
ती है। पर कल कहती है — 'मैं स्वयं घूमती हूँ'; वह जानती नहीं
उसे कौन घुमा रहा है।

तुम कृपा करो, अपने श्रीपादपद्मों में पूर्ण भक्ति दो, पूर्ण विश्वास और पूर्ण ज्ञान दो। तुम्हें छोड़ भला मेरा और कौन है! तुम दया करो। मेरे हृदय में प्रकाशित होओ।' तुम अपना साधन-भजन, काम-काज लेकर पड़े रहना। दूसरों ने क्या किया, क्या नहीं किया — यह सब देखकर तुम्हारा क्या होगा? जो साधना करेगा, उसी का होगा, वही आनन्द पाएगा। भगवान का चिन्तन बड़ा सहायक है। जप-ध्यान करने से, भगवान का नाम लेने से बुद्धि शुद्ध हो जायगी, रिपुओं (काम आदि) का दमन हो जायगा। बड़े अनुराग के साथ थोड़ा कर तो देखो। करो बच्चा, करो, बड़े अनुराग के साथ उनका नाम जपते जाओ। उनके नाम में ही सब शक्ति है।"

## बेलुड़ मठ

### बृहस्पतिवार, १० जुलाई, १९३०

तीन-चार दिन की अनवरत मूसलाधार वर्षा के बाद आज थोड़ी सी धूप निकली है। आज गुरुपूर्णिमा है। बहुत से भक्त मठ में आए हैं। कुछ व्यक्तियों की दीक्षा भी हुई है। सन्ध्या समय महापुरुष महाराज अपने कमरे में कुर्सी पर बैठे हैं। अनेक भक्त प्रणाम करके जा रहे हैं। वे भी सबसे सस्नेह कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं। नवदीक्षित भक्तगण आकर बैठ गए। उनमें से एक ने पूछा, "महाराज, नित्य कितना जप करना चाहिए? इसका कुछ निर्दिष्ट नियम है?"

महाराज — "नहीं, उसका कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। जितना जप कर सको, उतना ही अच्छा। जितना अधिक

करोगे, उतना ही मंगल होगा। फिर भी, यदि किसी की दस-पाँच हजार रोज जप करने की इच्छा हो, तो संख्यापूर्वक बड़ी निष्ठा के साथ वैसा कर सकता है। वह तो बहुत ही अच्छा है।"

भक्त — "यदि रास्ता चलते-चलते जप करने की इच्छा हो, तो कर सकता हूँ?"

महाराज — "हाँ, हाँ, अवश्य कर सकते हो। जप करना, भगवान का नाम लेना — यह तो जब इच्छा हो, तभी कर सकते हो। सब अवस्थाओं में भगवान का नाम-जप किया जा सकता है। इसमें समय-असमय, स्थान-अस्थान का विचार नहीं। किन्तु जप प्रेमपूर्वक करना चाहिए। तभी आनन्द मिलेगा और हृदय में शान्ति होगी। जब भी भीतर से जप करने की इच्छा हो, तभी करना — फिर वह चाहे दस मिनट हो या आधा घंटा या एक घंटा या उससे भी अधिक। Urge (जोर-जबरदस्ती) कुछ न करो, उससे कुछ अधिक नहीं हो पाता। यह तो प्रेम का सम्बन्ध है। भगवान के साथ भक्त का जो सम्बन्ध है, वह तो प्रेम का है। उसमें जोर-जबरदस्ती किसी प्रकार की नहीं। हृदय से खूब प्रार्थना करना, 'हे प्रभु, मुझे अपना बना लो। मैं अबोध हूँ, तुमसे किस प्रकार स्नेह करूँ, मैं यह कुछ भी नहीं जानता। तुम कृपा करके मुझे अपनी ओर खींच लो और अपने से प्रेम करना सिखा दो।'"

एक दूसरा नवदीक्षित भक्त — "महाराज, हम लोगों को क्या प्राणायाम का अभ्यास भी करना चाहिए?"

महाराज — "अधिकतर प्राणायाम करने को तो हम किसी से कहते नहीं। फिर आवश्यकता भी नहीं।"

भक्त — "आपने प्राणायाम के सम्बन्ध में जो लेख लिखा

है, उसमें कहा है कि भगवान का नाम जपते-जपते स्वयं ही वायु-रोध हो जाता है।"

महाराज —"हाँ, ऐसा ही होता है। बड़े प्रेम से ना लेने पर धीरे-धीरे मन स्थिर हो जाता है और प्राणायाम स्व ही होने लगता है। फिर भी, जप के साथ इच्छा हो, तो वा भीतर में धारण कर सकते हो। किन्तु रेचक, पूरक, कुम्भ यह सब जैसा राजयोग में दिया है, उस प्रकार करने की को आवश्यकता नहीं। वास्तविक बात है प्रेम और आन्तरिकता भगवान सत्यस्वरूप हैं, अन्तर्यामी हैं। सबके हृदय में वे हैं चैतन्यरूप से विराजमान हैं। वे अहेतुक कृपासिन्धु हैं। उनकी कृपा बिना, बच्चा, कुछ भी होने का नहीं। जप करो, ध्यान करो, प्राणायाम करो, याग-यज्ञ, व्रत आदि जो कुछ भी क्यों न करो, यदि उनकी कृपा न हुई, तो किसी से कुछ भी नहीं होता फिर भी, यदि आन्तरिक भाव से कोई उन्हें चाहता है, तो वे उसे दर्शन देते हैं, यह भी सत्य है।"

भक्त —"सन्ध्या-गायत्री — यह सब करूँगा क्या ?"

महाराज —"सन्ध्या-गायत्री यह सब वैदिक कर्म है। यह सब करना बहुत अच्छा है। पर सन्ध्या करने में यदि कोई असुविधा हो, तो नहीं भी कर सकते हो। किन्तु गायत्री-जप अवश्य करना चाहिए। गायत्री अत्यन्त उच्च कोटि की उपासना है। गायत्री द्वारा उन आदिपुरुष, भूर्भुवःस्वः आदि लोकों के स्रष्टा के समीप सद्बुद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है।"

धीरे-धीरे सब भक्त महापुरुषजी के कमरे से चले गए; एक नवदीक्षित भक्त अभी भी बैठे हैं। कुछ गुप्त बात कहने की इच्छा है। अब महाराज को अकेले पाकर भक्त मृदु स्वर

और सकरुण भाव से अपने मन की बात कहने लगे, "महाराज, मैंने जीवन में अनेक गर्हित कार्य किए हैं। मैं महापापी हूँ। आप कृपा करके मुझे अपने श्रीचरणों में स्थान दीजिए, कृपा कीजिए; नहीं तो मेरी क्या गति होगी? मैं यदि अपने जीवन की समस्त पाप-कथा आपसे कहूँ, तो आप भी मुझसे घृणा करने लगेंगे।" इतना कहकर थोड़ा ठहरकर और भी कुछ कहने ही वाले थे कि महापुरुषजी बड़े गम्भीर एवं भावपूर्ण स्वर से (मुख और आँखें लाल हो गईं) बोले, "बच्चा, कोई डर नहीं। आज से तुम सब पापों से मुक्त हुए। यही विश्वास करो। बच्चा, ठाकुर ने जब कृपा करके तुम्हें अपनी गोद में खींच लिया है, तो फिर अब डर किस बात का? अब तो तुम उनके हो गए हो। हम लोगों के ठाकुर अहेतुक कृपासिन्धु हैं, दीनदयाल और कपालमोचन हैं। तुम अब उनके शरणागत हो। आज से तुमने नई देह धारण कर ली, तुम्हारा पुनर्जन्म हो गया, अब तुम वह पापी-तापी नहीं रहे, बच्चा! आज से तुम उन्हीं की सन्तान, उन्हीं के दास हो गए। समझे, बच्चा? ठाकुर ने कृपा करके तुम्हारे पैरों का कीचड़ साफ कर तुम्हें प्रेमपूर्वक अपनी गोद में खींच लिया है। अब भूतकाल की सब पाप-कथाएँ भूल जाओ, वे सब भावनाएँ मन में उठने भी न दो। अब सानन्द बड़े प्रेम के साथ उनका नाम लिए जाओ, जीवन मधुमय हो जायगा।"

भक्त —"मन की गति अब भी फिरा नहीं पाता। शत्रु-दमन हो जाय, यही आशीर्वाद दीजिए।"

महाराज —"आशीर्वाद तो है ही, पर तुम्हें भी कुछ चेष्टा करनी पड़ेगी। तुम्हारे तो बाल-बच्चे हैं, अब से थोड़ा

केवल शास्त्र पढ़ लेने से ही क्या कुछ हो जाता है ? शास्त्रों का उपदेश अपने जीवन में ढालना पड़ता है। ठाकुर कहते थे—'पंचांग में तो लिखा है कि बीस इंच पानी गिरेगा, पर पंचांग को निचोड़ो, तो एक बूँद भी नहीं गिरेगा।' उसी प्रकार चाहे साधु-संग करो, चाहे शास्त्र पढ़ो, किन्तु साधना किए बिना कुछ भी नहीं होने का। ••• फिर इतने पास बैठकर वार्तालाप करना—वह भी मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। सभी का निःश्वास नहीं सह सकता; अनेक बार तो बहुत जबरदस्ती से बैठे रहना पड़ता है। इसी लिए तो जब बहुत असह्य हो जाता है, तब मैं कभी-कभी उठ जाता हूँ। फिर, बच्चा, इतनी बातें भी मैं नहीं कर सकता। मेरे मन की अवस्था भी वैसी नहीं है। बोलना ही पड़ता है, इसी लिए बाध्य होकर बातचीत करता हूँ। वे लोग तो जानते नहीं कि इससे मुझे कितनी मानसिक थकावट होती है। चुपचाप बैठे रहना ही मुझे अच्छा लगता है—आनन्दम्। पर अवश्य मैं किसी को आने के लिए मना नहीं करता। जानता हूँ वे लोग हृदयवान हैं, भक्त हैं—पर ••• बड़े भावुक हैं। सोचते हैं कि बस इतने से ही भाव हो गया। भाव क्या इतना सरल है ? उसके लिए कितना पहाड़ काटना पड़ता है ! केवल कहने से ही तो होगा नहीं ? इसके लिए मन को कितना तैयार करना पड़ता है। कितना संयम, कितना साधन-भजन चाहिए। ••• अपने भाव पर दृढ़ न होने से, भाव के परिपक्व न होने से ही अस्थिरता आती है। असल बात क्या है, जानते हो ? ठीक-ठीक अनुराग नहीं है, भगवत्प्रेम नहीं है। प्यास के मारे जो छटपट कर रहा हो, वह क्या सारा जीवन पानी में अच्छा-खराब देखता फिरता है ? ठाकुर को पाया है, उनका आश्रय लिया है।

उस पर भी नहीं होता, और एक दूसरा चाहिए! असल बात यह है कि अनुराग नहीं है, निष्ठा नहीं है। ठाकुर को लेकर अपने भाव में पड़ा रहे—धीरे-धीरे सब हो जायगा। इसी लिए तो ठाकुर अकसर गाते थे—

'आपनाते आपनि थेको मन, जेओ नाको कारो घरे।
जा चाबि ता वसे पाबि, खोजो निज अन्तःपुरे॥
परमधन सेइ परश मणि, जा चाबि ता दिते पारे।
कतो मणि पड़े आछे चिन्तामणिर नाचदुयारे॥'*

"इस प्रकार भाव लेकर लगे रहना पड़ता है। वे तो आत्माराम हैं, सबके भीतर ही रहते हैं। अन्तर में रहकर वे ही सब कुछ बतला देते हैं। व्याकुल होकर चाहने से ही वे पूर्ण कर देते हैं। सबके अभीष्ट फल देने के स्वामी वे ही हैं। जो जो चाहेगा—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उसे वे सब कुछ देते हैं। सद्‌गुरु-निर्दिष्ट पथ से धीरतापूर्वक जाना पड़ता है। बच्चा, यह पथ बड़ा कठिन है। निष्ठा चाहिए, श्रद्धा चाहिए, अदम्य अध्यवसाय चाहिए। जैसे किसी ने एक जगह थोड़ी मिट्टी खोदी, वहाँ पानी नहीं निकला, यह देखकर उसने फिर दूसरी जगह खोदना प्रारम्भ किया। वहाँ भी पानी नहीं निकला। फिर तीसरी जगह खोदना प्रारम्भ किया—ऐसा करने से तो वह सारा जीवन मिट्टी ही खोदता रहेगा—पानी उसे कभी मिलेगा ही नहीं। इसी प्रकार जो साधक एक निश्चित साधन-मार्ग में नहीं लगा रह सकता, उसे भगवत्प्राप्ति कभी भी नहीं होती। * * * मैं तो उसके बारे में सब सुन चुका हूँ, इसी लिए दुःख होता है। कैसा अस्थिर चित्त है! Depth (गभीरता) तो उसमें बिलकुल है

* भावार्थ के लिए पृष्ठसंख्या ८ देखिए।

ही नहीं, सब कुछ उथला-उथला है। अपने भाव में दृढ़ हुए बिना पाँच जगह आना-जाना, दस लोगों के साथ मिलना-जुलना ठीक नहीं। इससे अपना भाव नष्ट हो जाता है। 'हाँ जी, हाँ जी करते रहो बैठे अपने ठाँव।' (यह उन्होंने दो-तीन बार कहा।) 'अपने ठाँव' को ठाकुर कहते थे — अपना भाव। अपने भाव में पक्का होकर अपने भाव को दृढ़ कर लेना पड़ता है। फिर साथ ही सब लोगों के साथ मिल-जुलकर भी रहना पड़ता है। अरे भाई, ठाकुर के नाम से ही तुम्हें आनन्द मिलेगा — उनके नाम से सब कुछ पाओगे — भाव, समाधि आदि सब पाओगे। किन्तु सब कुछ समय-सापेक्ष है। फिर तुम गृहस्थ हो — तुम्हारा अपना काम-काज भी तो है? हाँ, बीच-बीच में हो सके, तो कहीं चले गए। ठाकुर कहते थे — निर्जन-वास बहुत ही अच्छा है। किन्तु उसके अभाव में किसी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति होगी ही नहीं, सो बात तो नहीं है? किसी एक व्यक्ति की बात तन-मन-वचन से माननी पड़ती है। इसी लिए तो शास्त्र में गुरु की शरण जाने का उपदेश है। सद्गुरु रास्ता बतला देते हैं — ठीक रास्ता पकड़ा देते हैं।

"'धर्म' के बारे में वे लोग क्या जानते हैं? इस प्रकार की तो अनेक भाव-समाधि हमने देखी हैं। वह सब ठाकुर का भाव नहीं है। वह सब दिखाऊ भाव हैं — उससे तो बल्कि अनिष्ट होता है। ठाकुर कहते थे — ध्यान करो मन में, कोने में और वन में। जो निम्न अधिकारी होते हैं, वे ही थोड़े में कहते-फिरते हैं — लोगों को दिखलाते फिरते हैं। इस प्रकार सब बाहरी expression (अभिव्यक्ति) क्यों दिखाता फिरता है? इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अपने भाव में वह अभी

भी दृढ़ नहीं हुआ—पक्का नहीं हुआ। छटपट करने से क्या होगा? साधन-भजन में डुबकी लगानी पड़ती है—अपने भीतर भाव को जगाना पड़ता है। * * * दूसरे की भाव-भक्ति देखकर कुछ देर के लिए थोड़ा उच्छ्वास और व्याकुलता भले ही आ जाती हो, किन्तु जिन लोगों ने भगवान की कृपा प्राप्त की है, उन सबों को अनेक प्रयत्न करने पड़े हैं—धीरज धरकर बहुत साधन-भजन करना पड़ा है। आन्तरिक होने पर वे कृपा करेंगे ही। उनके राज्य में अन्धेर नहीं है। वे समदर्शी हैं। जो उन्हें चाहता है, वही पाता है। भगवान की दया तो सब पर है ही, वे तो दया करने के लिए अपना हाथ बढ़ाए ही हुए हैं। व्याकुल होकर चाहने से ही उनको पाएगा। इधर चाहेगा न कुछ करेगा भी नहीं और उधर केवल छटपट, केवल हाहाकार—'मुझे कुछ हुआ नहीं, मुझे कुछ भी हुआ नहीं' कहता फिरेगा। एक ही दिन में तो होता नहीं? Introspection (आत्मपरीक्षा) चाहिए। और थोड़ा regular practice (नियमित अभ्यास) चाहिए। साधन-भजन करते रहने पर फिर कोई चिन्ता नहीं—शान्ति अवश्य मिलेगी। करके तो देखे, शान्ति मिलती कैसे नहीं * * * उससे कह देना कि इस समय मेरे पास आने की कोई आवश्यकता नहीं। जो कुछ कहने का था, सो उसी दिन में कह दिया है। अब यदि शान्ति चाहता है, तो जैसा बताया है वैसा करे।"

सेवक के मन में केवल यही होता रहा—अहा! वे प्रत्येक भक्त के कल्याण के लिए कितनी चिन्ता करते हैं! कितने गम्भीर भाव से चिन्ता करते हैं!

## बेलुड़ मठ

**मंगलवार, ५ अगस्त, १९३०**

ढाका में हिन्दू और मुसलमानों का दंगा हो जाने के कारण रामकृष्ण मिशन की ओर से पीड़ितों की सेवा का बन्दोबस्त किया गया है। समाचार-पत्रों में चन्दा के लिए प्रार्थना की गई है। प्रातःकाल का समय है। अनेक लोग महापुरुषजी को प्रणाम करने के लिए आए हैं। इसी समय एक संन्यासी ने आकर प्रणाम किया और एक ओर खड़े हो गए। उनसे महाराज ने पूछा, "क्यों जी, relief (सेवा-कार्य) के लिए रुपया आ रहा है?"

संन्यासी —"नहीं महाराज, कोई अधिक नहीं आ रहा।"

महाराज —"सो धीरे-धीरे आएगा। तुम लोग रुपए के लिए चिन्ता मत करो। उनका काम है, वे ही रुपया एकत्र करा देंगे।"

संन्यासी —"और एक मुश्किल है महाराज, इन सब कामों में अपने को स्थिर रखना बहुत कठिन है। पाखण्डियों ने कितना अमानुषिक अत्याचार किया है!"

महाराज —"सो तो किया ही है। किन्तु, बच्चा, हम लोगों का काम है सेवा करना और उस सेवा के द्वारा अपनी चित्तशुद्धि करना। स्वामीजी ने जैसा कहा है, 'By doing good to others we do good to ourselves'—'दूसरों का भला करके हम अपना ही भला करते हैं।' दूसरों का उपकार करके अपना कल्याण करना —यही तो हम लोगों की सेवा का उद्देश्य है। इन सब कार्यों में ही तो अपनी खूब परीक्षा की जा सकती है। बाहर से कितनी ही विघ्न-

बाधाएँ क्यों न आएँ, तुम लोग अविचलित भाव से उनका काम किए जाना। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'—'अपनी मुक्ति और जगत् के कल्याण के लिए'—यही तुम लोगों के जीवन का आदर्श है। तुम लोगों की दृष्टि सदा उच्च रहनी चाहिए। जैसा महान् तुम्हारा आदर्श है, वैसा ही विशाल हृदय भी होना चाहिए। यह सब जो communal (साम्प्रदायिक) दंगा-फिसाद और झगड़ा आदि हो रहा है, उस सबके पीछे में तो उसी सर्वकल्याणमयी महामाया का हाथ देख रहा हूँ। उन्हीं की शुभ इच्छा से यह सब हो रहा है, और इसका फल भी अच्छा ही होगा। इसके द्वारा हिन्दुओं में एकता का भाव उत्पन्न होगा और वे संघबद्ध होना सीखेंगे। परस्पर के प्रति feel (समवेदना) करना सीखेंगे। इस सबकी बड़ी आवश्यकता हो गई है। हिन्दुओं की सबसे बड़ी आवश्यकता है—संघबद्ध होना, अपने बीच एकता लाना। यदि बाहर से pressure (दबाव) न पड़े, तो क्या इतने दिनों की जड़ता, नीचता कहीं कट सकती है? तुम लोग विश्वास किए जाओ कि यह सब माँ की इच्छा से हो रहा है—इससे हिन्दू जाति का कल्याण ही होगा। समग्र जाति के अन्दर नवीन जागरण पैदा होगा। ठाकुर-स्वामीजी जब इस जाति में पैदा हुए हैं, तब हिन्दुओं की सब विषयों में बहुत उन्नति होगी ही।"

शाम के लगभग ५ बजे हैं। पशुपति महाराज (स्वामी विजयानन्द) कलकत्ते से आए और महापुरुषजी के कमरे में प्रवेश कर बोले, "महाराज, relief (सेवा-कार्य) के लिए एक सज्जन ने ५००) रुपए दिए हैं, जरूरत पड़ने पर और भी देने का वचन दिया है।" यह समाचार सुनकर महापुरुषजी बहुत

प्रसन्न हुए और आँखें बन्द कर हाथ जोड़कर बोले, "जय माँ! उनकी लीला कौन समझ सकता है? यही उन्होंने एक रूप में कष्ट दिया है, और फिर उन्होंने ही दूसरे रूप में लोगों के मन में उस दुःख को हटाने का भाव भी दिया है। 'या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥'—'जो देवी समस्त प्राणियों में दया-रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार।' वे एक हाथ से संहार कर रही हैं और दूसरे से वरदान और अभय दे रही हैं। स्वामीजी कहते थे, 'काली मूर्ति ही भगवान का perfect manifestation (श्रेष्ठ विकास) है।' सृष्टि, स्थिति, लय — सबकी कर्ता वे ही हैं। एक ओर तलवार द्वारा ध्वंस कर रही है और दूसरी ओर वर और अभय प्रदान कर रही हैं! यही है भगवान की लीला। एक रूप में वे इतने लोगों को कष्ट दे रही हैं — अनाहार, रोग और शोक लाकर मार रही हैं। फिर दूसरे रूप में वे ही बहुत से लोगों के हृदय में उस दुःख के मोचन की प्रेरणा भी उत्पन्न कर रही हैं। तुम धन्य हो माँ, तुम्हारी लीला कौन समझ सकता है? आज तक कोई समझ नहीं सका और कोई समझ भी नहीं सकेगा। सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक जितने योगी, ऋषि हुए, कोई भी उन्हें समझ न सका। अनन्त लीलामयी माँ! —

'के तोमारे जानते पारे, तुमि ना जानाले परे।
वेद वेदान्त पाय ना अन्त, घुरे बेड़ाय अन्धकारे॥'*

* (ओ माँ,) यदि तुम स्वयं को न जना दोगी, तो तुम्हें भला कौन जान सकता है? वेद-वेदान्त तुम्हारा अन्त नहीं पा सकते, वे तो अन्धकार में ही टटोलते फिरते हैं।

इसी लिए तो ठाकुर कहते थे, 'माँ, मैं तुम्हें जानना नहीं चाहता, तुम्हें भला कौन जानेगा? तुम्हें कोई कभी जान नहीं सका, न कभी जान ही सकेगा। किन्तु इतना करो माँ, अपनी भुवन-मोहिनी माया में मुझे मुग्ध मत करो, और कृपा करके अपने श्रीपादपद्मों में शुद्धा भक्ति और विश्वास दो।' (हाथ जोड़कर) माँ, हम लोगों को भक्ति-विश्वास दो, भक्ति-विश्वास दो।"

## बेलुड़ मठ

**बुधवार, ६ अगस्त, १९३०**

प्रातःकाल का समय है। मठ के साधु लोग क्रमशः महापुरुषजी के कमरे में एकत्रित हो रहे हैं। स्वामी विजयानन्द ने आकर प्रणाम किया और खड़े हो गए। महापुरुषजी ने उनसे पूछा, "क्यों, आजकल तुम लोग क्या पढ़ रहे हो?"

स्वामी विजयानन्द — "श्रीमद्भागवत पढ़ा जा रहा है।"

महाराज — "भागवत का कौन स्थल?"

स्वामी विजयानन्द — "अवधूत के चौबीस गुरुओं की कथा पढ़ी जा रही है। अनंग (स्वामी ओंकारानन्द) ही पढ़ता है, मैं बैठा सुनता हूँ। कभी वह पहले से पढ़ रखता है और मुझे आकर कहानी के रूप में सुनाता है। उसी के उत्साह से मेरा भी पढ़ना होता जा रहा है। वही जोर करके वैष्णव philosophy (दर्शन) पढ़ने को कहता है, इसी लिए पढ़ रहा हूँ।"

महाराज — "हम लोगों का भी स्वामीजी के साथ ऐसा बहुत होता था। वे तो एक-एक समय एक-एक भाव में रहते थे, और हम सबको उसी भाव में उत्साहित करते थे। कभी ज्ञान-चर्चा,

तो कभी भक्ति-चर्चा, यही सब होता था। ऐसा भी समय बीता है कि हम सब लोग महीने-महीने तक एक ही भाव में मस्त रहे हैं। दिन-रात सदा वही एक भाव। खाते, पीते, सोते, बैठते —सब समय वही एक आलोचना और विचार चलता रहता था और साथ-साथ हम लोग उस भाव की साधना भी करते रहते थे। स्वामीजी बुद्धदेव का भाव बहुत पसन्द करते थे और Buddhist philosophy ( बौद्ध दर्शन ) भी बहुत पढ़ते थे। वे कोई एकदेशीय भाववाले तो थे नहीं? उनके भाव, भाषा, युक्ति-तर्क सभी उस समय से ही एक अद्भुत प्रकार के थे। वे जो साधारण बात कहते थे, वह भी बहुत ऊँचे भाव और पाण्डित्य-पूर्ण भाषा में कहते थे। वे मिल्टन की भाषा बहुत पसन्द करते थे। विचार या तर्क आदि जब करने लगते, तो मिल्टन की भाषा में करते। स्वामीजी अमेरिका जाने से पहले जब भारत के एक प्रान्त से दूसरे में परिव्राजक अवस्था में घूमते फिर रहे थे, तब एक समय जूनागढ़ के दीवान के साथ उनकी भेंट हुई। दीवान उनके साथ बातचीत करके इतने impressed ( प्रभावित ) हुए थे कि उन्होंने स्वामीजी से कहा था, ' Swamiji, you have a very bright future before you '—' स्वामीजी, आपका भविष्य मुझे बड़ा गौरवपूर्ण दिखता है।' और वैसा ही हुआ भी। स्वामीजी अमेरिका जाकर जब शिकागो Parliament of Religions ( धर्म-महासम्मेलन ) में गए, तो पहले थोड़ा nervous हो ( घबड़ा-से ) गए थे। और वह तो स्वाभाविक ही है। इतनी बड़ी gathering ( सभा ), हजार-हजार लोग एक साथ बैठे हुए और सब-के-सब धुरन्धर— flowers of the society। क्या कहें कुछ सोच ही नहीं पाए; क्योंकि वे

कोई व्याख्यान तैयार करके तो गए नहीं थे! डाक्टर बैरोज उनसे उठने के लिए कहते हैं, और वे केवल अपना नाम पीछे हटाते जाते हैं। इसी समय एकाएक उनको यह श्लोक याद आ गया —

'मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥'

—'जिनकी कृपा से मूक वाचाल हो जाता है और पंगु पर्वत लाँघ लेता है, उन्ही परमानन्द-स्वरूप माधव की मैं वन्दना करता हूँ।' बस याद आते ही सब डर मिट गया और वे ठाकुर को मन-ही-मन प्रणाम कर खड़े हो गए। उसके बाद जो हुआ, वह तो तुम लोगों ने पढ़ा ही है। उनके मुख से जगत् ने एक नई बात सुनी। उनकी वक्तृता ही सबसे अच्छी हुई। बच्चा, यह ईश्वरीय शक्ति का खेल है। ठाकुर के direct instrument (साक्षात् यन्त्रस्वरूप) थे स्वामीजी। उनके सामने अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए सज-धजकर आए हुए बड़े-बड़े पंडित वक्तागण सब म्लान हो गए। इसी कारण वहाँ के लोगों ने बहुत सा धन चन्दा करके डाक्टर बैरोज को भारतवर्ष आदि देशों में ईसाई धर्म के सम्बन्ध में व्याख्यान देने के लिए भेजा। और बैरोज साहब ने यहाँ आकर अनेक स्थानों पर घूम-घूमकर वक्तृताएँ भी दीं, किन्तु कुछ विशेष फल नहीं हुआ। स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों में उसी वेदान्त-वाणी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। उनकी वक्तृताएँ यहाँ भी आने लगीं। हम लोगों ने पहले-पहल जब स्वामीजी का व्याख्यान पढ़ा, तो विश्वास न कर पाए कि यह स्वामीजी का व्याख्यान है। उनकी न तो वह भाषा थी और न वह भाव! सब बदल

गया था। वह एक नूतन भाव था, एक नई भाषा थी। अमेरिका जाने से पहले इस देश में वे जितने दिन रहे, तब तक उनकी बातचीत आदि में ज्ञान का भाव ही अधिक प्रकट होता था। भाषा भी बड़ी philosophical (दार्शनिक) और पाण्डित्यपूर्ण रहती थी। किन्तु उस देश मे उन्होने जो सब वक्तृताएँ दीं, उनकी भाषा जैसी सरल थी, भाव भी वैसा ही सरस और प्रेमपूर्ण था। स्वामीजी ने बाद में यहाँ लौटने पर कहा था, 'अरे, वे सब वक्तृताएँ क्या मैंने दी है? मेरे मुख द्वारा ठाकुर ने ही सब कहा है।' और वास्तव में वैसा ही था।"

## बेलुड़ मठ

### सोमवार, ११ अगस्त, १९३०

सन्ध्या समय है। आकाश में घनघोर घटा छाई है। महापुरुषजी अपने कमरे में आरामकुर्सी पर बैठे हुए 'एशिया' नामक मासिक पत्रिका मे स्वामीजी के सम्बन्ध में रोमाँ रोलाँ का लेख बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ रहे हैं। इसी समय एक सेवक एक भक्त को प्रणाम कराने के लिए लेकर आया और कहा, "ये श्रीश्रीमाँ के कृपापात्र है; आपके दर्शन करने आए हैं।" भक्त ने बड़े भक्ति-भाव के साथ प्रणाम किया और छलकते हुए नेत्रों से, हाथ जोड़कर उठकर खड़ा हुआ।

महापुरुषजी ने उससे सस्नेह पूछा, "क्यों बच्चा, तुमने माँ की कृपा प्राप्त की है?"

भक्त —"जी हाँ।"

महाराज —"तुम महाभाग्यवान हो, जो तुम्हे माँ की

कृपा मिली। तुम्हें अब चिन्ता किस बात की! तुम लोगों की माँ क्या साधारण माँ हैं? जगत् के कल्याण के लिए, और जीवों को मुक्ति देने के लिए स्वयं जगज्जननी लीला-देह धारण कर आई थीं।"

भक्त —"आप जरा आशीर्वाद दीजिए, जिससे श्रीश्रीमाँ के श्रीपादपद्मों में दृढ़ भक्ति-विश्वास रहे।"

महाराज —"ऐसा ही होगा बच्चा, ऐसा ही होगा। थोड़ा-बहुत जप-ध्यान तो करते हो न? नित्य थोड़ा जप, प्रार्थना सब करते जाना।"

भक्त —"हम लोग संसार में फँसे पड़े हैं। रुपए-पैसे तथा अन्य विविध प्रकार की चिन्ता में ही सब समय चला जाता है, फिर भगवान का नाम-जप कब करें? आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे ये सब रोड़े हट जायँ।"

महाराज —"बच्चा, संसार का काम क्या चौबीसों घंटे करते रहोगे? दिन-रात क्या रुपया-रुपया ही रटते रहोगे? भगवान का नाम थोड़ा भी न लोगे? जो कुछ भी हो, जितनी देर भी कर सको, नित्यप्रति नियमित भाव से थोड़ा-बहुत करना अवश्य चाहिए। यदि किसी दिन अधिक अवकाश न मिले, तो दस-पाँच मिनट ही सही, यहाँ तक कि दो-चार मिनट ही, पर होना अवश्य चाहिए। नित्य नियमित रूप से करना ही होगा। और जितना करोगे, उतना आन्तरिक भाव से करना, हृदय से करना। उससे कल्याण होगा। तुलसीदास ने कहा था—'एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी हू में आध,' इत्यादि। आन्तरिकता चाहिए, बच्चा। माँ तो अन्तर्यामिनी हैं, वे समय तो देखती नहीं, वे देखती हैं हृदय। तुम्हारा उनके प्रति हार्दिक आकर्षण कितना है, वही वे देखती हैं। किसी भी अवस्था में

क्यों न रहो, खूब हृदय से प्रार्थना करना, 'माँ, दया करो, दया करो। अपने श्रीपादपद्मों में भक्ति दो, विश्वास दो।' ठाकुर कहा करते थे कि गृहस्थ की पुकार भगवान बहुत सुनते हैं। संसारियों की थोड़ी सी पुकार पर ही भगवान कृपा करते हैं; क्योंकि वे तो अन्तर्यामी हैं। वे खूब जानते हैं कि इनके सिर पर कितना बोझा लदा है। थोड़े में ही संसारियों पर उनकी कृपा हो जाती है —'ओह! इन लोगों के सिर पर हजारों मन बोझा लदा है। उसे हटाकर भी ये मुझे देखना चाहते हैं।' इसी लिए थोड़े से में ही वे गृहस्थों पर प्रसन्न हो जाते हैं। इसी लिए कहता हूँ बच्चा, जितनी देर हो सके, थोड़ा-थोड़ा रोज ही ठाकुर को पुकारना।"

भक्त —"सो थोड़ा-थोड़ा तो रोज ही करता हूँ — कुछ देर जप, ध्यान, प्रार्थना नित्य ही करता हूँ। किन्तु उससे मन नहीं भरता। इच्छा होती है और भी करूँ, किन्तु समय नहीं मिलता।"

महाराज —"जो कर रहे हो, वही किए जाओ — आन्तरिकता के साथ। उसी से कल्याण होगा।"

भक्त —"एक बात और पूछूँ? आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसलिए अधिक बात करते डर लगता है।"

महाराज —"कहो, कहो।"

भक्त —"श्रीश्रीमाँ ने जो मन्त्र दिया है, उसी का जप किए जा रहा हूँ। किन्तु मन्त्र का क्या अर्थ है, यह तो नहीं जानता, और उन्होंने भी नहीं बताया।"

महाराज —"इस मन्त्र का जप किए तो जाते हो न? बस ठीक है। मन्त्र का और अर्थ क्या? मन्त्र है भगवान का

नाम। और नाम के साथ जो बीज है, वह है विशेष-विशेष देवी-देवता का शरीर में भाव-प्रकाशक। बीज और नाम दोनों मिलकर ही मन्त्र है। साधारणतया मन्त्र से भगवान का ही बोध होता है। मन्त्र जप करने से उन्हीं को पुकारना होता है। और अधिक अर्थ जानकर क्या करोगे, बच्चा? परम विश्वास से उसी महामन्त्र का जप किए जाओ, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा।"

भक्त —"आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे मैं इस भव-बन्धन से छूट सकूँ।"

महाराज —"बहुत आशीर्वाद देता हूँ बच्चा, ऐसा ही होगा।"

## बेलुड़ मठ

### रविवार, १७ अगस्त, १९३०

आज जन्माष्टमी है। बड़े सवेरे से ही महापुरुषजी श्रीकृष्ण के अनेक नामों का बार-बार उच्चारण कर रहे हैं। बीच-बीच में मधुर कण्ठ से 'गोविन्द' 'गोविन्द' कह रहे हैं। श्रीकृष्ण-स्तव का पाठ और आवृत्ति कर रहे हैं। कभी-कभी नाम-गान करते हैं। धीरे-धीरे मठ के साधु और ब्रह्मचारीगण उन्हें प्रणाम करने के लिए आ रहे हैं और प्रणाम के बाद कोई-कोई कमरे में ही खड़े हैं। अनेक प्रकार की बातें हो रही हैं। बाद में स्वामी ओंकारानन्द को लक्ष्य कर महाराज कह रहे हैं, "आज बहुत अच्छा दिन है! हजारों वर्ष पहले इसी दिन श्रीभगवान जगत् के कल्याणार्थ श्रीकृष्ण-रूप धारण कर धराधाम

पर अवतीर्ण हुए थे। किन्तु आज भी हजारों नर-नारी उनके नाम से अनुप्राणित हो रहे हैं और शान्ति पाते हैं। जो भगवद्भक्त हैं, उनका ऐसे विशेष दिनों में बहुत उद्दीपन होता है, वे बड़ा आनन्द लूटते हैं। ठाकुर को देखा है, ऐसे विशेष दिनों में उनकी समाधि और भाव में कितनी वृद्धि हो जाती थी! वे स्वयं चेष्टा करके भी सँभाल नहीं सकते थे। उनके मन की गति ही उच्च दिशा की ओर थी। जोर-जबरदस्ती करके किसी प्रकार वे मन को नीचे रखे रहते थे। जगत् के कल्याण के लिए जगन्माता उनके मन को जरा नीचे किए रहती थीं। अहा! वह कैसा दृश्य था! इतना भाव होता था कि फिर बात तक नहीं कर पाते थे! कैसा प्रेम था! घर-घर आँसू — मानो धारा बह रही हो। ऐसे प्रेम के आँसू कभी और किसी के नहीं देखे। 'वचनामृत' में कहीं-कहीं उसका थोड़ा-बहुत वर्णन है। और उसका भला वर्णन भी क्या किया जा सकता है? जिसने देखा है, वही जानता है। भाव, समाधि — यह सब तो उनके लिए नित्य की बात थी। मास्टर महाशय प्रत्येक दिन तो नहीं जा पाते थे। शनिवार, रविवार तथा अन्य छुट्टी के दिन ही उनके पास जाते थे, अथवा उनके साथ किसी दूसरी जगह साक्षात्कार हो जाता था। उन्होंने जो स्वयं देखा, वही लिख रखने की चेष्टा की।"

## बेलुड़ मठ

### शनिवार, २० दिसम्बर, १९३०

कल श्रीश्रीमाँ की शुभ जन्म-तिथि है। मठ के कुछ त्यागी

युवकों की ब्रह्मचर्य-दीक्षा होगी। इसी प्रसंग में महापुरुष महाराज ने कहा, "स्वाध्याय बहुत अच्छा है। शास्त्रों का अध्ययन भी साधना का ही एक अंग है। ब्रह्मचारियों के लिए आवश्यक है कि वे पहले गीता का अध्ययन खूब अच्छी तरह करें। गीता के समान क्या और कोई ग्रन्थ है ? यह बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ है। उसमें सभी भाव विद्यमान है— ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग। मुझे इसमें यही सबसे अधिक अच्छा लगता है कि स्वयं भगवान ने अपने भक्त को आश्वासन देते हुए कहा है— 'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।'* अहा! कितना बड़ा आश्वासन है! वे बड़े आश्रितवत्सल हैं! जिसने तन-मन-वचन से उनके श्रीचरणों में आश्रय लिया है, उसे फिर चिन्ता की कोई बात नहीं। वे उसकी सर्वतोभावेन रक्षा करेंगे। अहा, कितनी कृपा है! किन्तु महामाया की माया भी कैसी है— मनुष्य उनकी ऐसी कृपा को समझ नहीं पाता! चाहे जितना ही बड़ा विद्वान् हो, बुद्धिमान हो, उनके कृपाकटाक्ष के बिना इस माया के हाथ से रक्षा होना असम्भव है। वे यदि दया करके माया का आवरण थोड़ा सा हटा लें, तभी जीव उनकी दया को समझ सकता है।—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥'†

---

* गीता—९।३१

† कठोपनिषद्—१।२।२३. यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणाशक्ति अथवा अधिक शास्त्र-श्रवण से ही प्राप्त हो सकती है। यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त की जा सकती है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देती है।

"सिकन्दर, नेपोलियन, कैसर ये सब कितने बड़े वीर थे; सम्पूर्ण जगत् को धूल में मिला दे सकते थे! लौकिक दृष्टि से ये लोग अवश्य अत्यन्त शक्तिमान पुरुष थे; किन्तु अनादि काल से चलनेवाले इस सृष्टि-प्रवाह में ये सब सामान्य बुद्बुद मात्र थे। उनकी इस शक्ति के द्वारा इस महामाया का पाश नहीं काटा जा सकता। और जब तक वह हुआ नहीं, तब तक सभी वृथा है— मानव-जन्म ही व्यर्थ है। उसके लिए चाहिए भगवत्कृपा। और उस भगवत्कृपा के लाभ का रहस्य भी भगवान ने स्वयं ही कहा है—

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'*

—'तुम मद्गतचित्त होओ, मेरे भक्त और मेरे पूजनशील होओ। मुझी को नमस्कार करो। ऐसा करने पर मेरे प्रसादलब्ध ज्ञान द्वारा मुझी को प्राप्त होओगे। प्रतिज्ञा करके कहता हूँ—क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो। समस्त धर्माधर्म का परित्याग कर एकमात्र मेरी ही शरण में आओ। मैं तुमको समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा। शोक मत करो।'"

एक भक्त ने उनसे दीक्षा के लिए प्रार्थना की। इस पर उन्होंने कहा, "मेरी दीक्षा में कोई गुप्त बात नहीं है। मैं जानता हूँ कि युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण का नाम लेने से ही मुक्ति होती है। जो उनके शरणागत होगा, वे उसका अवश्य उद्धार करेंगे। यह युगधर्म है। ठाकुर कहते थे कि बादशाही जमाने का रुपया इस युग में नहीं चलता। 'रामकृष्ण' नाम ही इस युग का

* गीता—१८।६५-६६

मन्त्र है। दीक्षा और क्या है? ठाकुर ही दीक्षा हैं। मैं, वत्स, तान्त्रिक अथवा पुरोहिती दीक्षा नहीं जानता। उनका नाम जपकर देखो भला! और बहुत-बहुत प्रार्थना करना—'हे प्रभु! मुझ पर दया करो।' आन्तरिक प्रार्थना करने पर वे सुनेंगे ही, अवश्य सुनेंगे। ठाकुर स्वयं कहते थे—'जो राम थे, जो कृष्ण थे, वे ही इस समय (अपने शरीर को दिखाकर) इस रूप में आए हैं।' वत्स, यह स्वयं भगवान की वाणी है—युगावतार की वाणी है। हम लोग भी वही कहते हैं। इस युग में ठाकुर का नाम लेने से ही मुक्ति हो जायगी। इस 'अन्ध-विश्वास' को लेकर यदि रह सको, तो आओ—फिर जो जानता हूँ, हृदय खोलकर सिखला दूँगा; नहीं तो जाओ युक्ति-तर्क करो; बाद में समय होने पर आना। यह कट्टरता नहीं है—यह प्रत्यक्ष सत्य है। हम जानते हैं कि ठाकुर ही स्वयं सनातन परब्रह्म हैं। यह विश्वास रहना चाहिए। तुम अच्छे लड़के हो, विद्वान् और बुद्धिमान हो तुममें यथेष्ट उत्साह है, तुमने बहुत पढ़ा-लिखा है; और भी करो; और साथ-साथ मन को स्थिर करो; हृदय में अनुराग जगाओ व्याकुलता बढ़ाओ; उन्हें खूब पुकारो। देखोगे, समय आने पर सब हो जायगा। मन को तैयार करो। ठाकुर कहते थे—'फूल फूलने पर भ्रमर अपने आप ही खिंच आते हैं।' इसी लिए कहता हूँ पहले हृदयपद्म विकसित करने की चेष्टा करो। तब, गुरु की कृपा आप ही उपस्थित हो जायगी। वे तो अन्तर्यामी हैं—तुम्हारे हृदय में ही रहते हैं, तुम्हारी अन्तरात्मा-रूप में। समय आने पर वे सब कुछ बतला देंगे।

"सांसारिक महत्वाकांक्षा होना अच्छी बात है। इतने दिन तक यह सब तो किया। अब इस समय आत्मज्ञान लाभ

करने के लिए एक बार लग तो जाओ! जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा है — भगवान को जानना। उठकर एक बार लग तो जाओ! खूब निश्चय के साथ मन की समस्त शक्ति को इस ओर लगा दो — प्रकृत जीवन के लाभ के लिए।"

भक्त के अत्यन्त आग्रह करने पर महापुरुषजी उसे दीक्षा देने के लिए राजी हो गए।

## बेलुड़ मठ

### रविवार, २१ दिसम्बर, १९३०

आज श्रीश्रीमाँ की शुभ जन्म-तिथि है। प्रातःकाल से ही महापुरुष महाराज के श्रीमुख से लगातार 'माँ, माँ' रव का उच्चारण हो रहा है, मानो मातृगतप्राण शिशु अपनी माँ को पुकार रहा हो! हाथ जोड़कर आँखें बन्द कर प्रार्थना कर रहे हैं, "माँ, माँ, महामाया, जय माँ, जय माँ। माँ, हम लोगों को भक्ति-विश्वास दो, पूर्ण विश्वास दो, ज्ञान, वैराग्य, अनुराग, ध्यान और समाधि दो। ठाकुर के इस संघ का कल्याण करो, समग्र जगत् का कल्याण करो, जगत् में शान्ति स्थापित करो।" बाद में कुछ देर तक चुप रहकर फिर कहने लगे, "हम लोगों में भक्ति नहीं है, इसी लिए इन सब विशिष्ट दिनों का माहात्म्य ठीक-ठीक नहीं समझ पाते। आज क्या ऐसा-वैसा दिन है? महामाया का जन्म-दिन है। जीव-जगत् के कल्याणार्थ स्वयं महामाया ने आज के दिन जन्म-ग्रहण किया था। उनकी मानवी लीला समझना बहुत कठिन है। वे [illegible] करके यदि न समझावें, तो भला कौन समझ [illegible] भाव में रहती थीं! कितनी गुप्त

थीं! बिलकुल मानो छद्मवेश में रहती हों। हम लोग उन्हें क्या समझ सकेंगे? एकमात्र ठाकुर ही माँ को अच्छी तरह पहचान सके थे। उन्होंने एक दिन हम लोगों से कहा था—'यह मन्दिर की माँ और यह नौबत की माँ—दोनों अभिन्न हैं।' और समझे थे स्वामीजी। अहा! उनकी श्रीश्रीमाँ पर कैसी अपार भक्ति थी! उन्होंने कहा था कि माँ के ही आशीर्वाद से वे समुद्र-पार जाकर जगद्विजय कर आ सके हैं।"

जितने साधु-भक्त प्रणाम करने के लिए आए थे, उनमें से अनेक से उन्होंने पूछा, "तुमने माँ को देखा है?"

रविवार होने के कारण भक्तों की संख्या कुछ अधिक थी। लगभग तीन हजार भक्त नर-नारियों ने आनन्दपूर्वक प्रसाद पाया। प्रातःकाल घने मेघ देखकर सबको लगा कि यदि कहीं वृष्टि हुई, तो माँ के आनन्दोत्सव में कुछ बाधा पड़ेगी। इतने में एक वृद्ध संन्यासी ने बादल देखकर कुछ चिन्ता-सी प्रकट की। इस पर महापुरुषजी ने थोड़ी देर तक चुप रहकर कहा, "नहीं, कोई भय नहीं। माँ की कृपा से आज का दिन अच्छा ही बीतेगा। वे मंगलमयी सब मंगल ही करेंगी।"

अपराह्न काल में पूजनीय गंगाधर महाराज* माँ का उत्सव देखने आए। उन्हें देखकर महापुरुषजी को बहुत आनन्द हुआ। माँ के मन्दिर में सस्वर चण्डी-पाठ हो रहा था। मठ में यह पहला चण्डी-पाठ था। चण्डी-पाठ कैसा हुआ, इसके बारे में महापुरुषजी बारम्बार पूछ रहे थे। बाद में उन्होंने कहा, "हम लोगों की माँ का नाम था सारदा। ये माँ ही स्वयं सरस्वती हैं। वे ही कृपा करके ज्ञान देती हैं। ज्ञान अर्थात्

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी अखण्डानन्द।

ागवान को जानना — इस ज्ञान के होने पर ही वास्तविक रिपक्व भक्ति होना सम्भव है। ज्ञान हुए बिना भक्ति नहीं ोती। शुद्ध ज्ञान और शुद्धा भक्ति दोनों एक ही हैं। .माँ की ृपा होने पर ही वह होना सम्भव है। माँ ही ज्ञान देने की वामिनी हैं।"

## बेलुड़ मठ

### बृहस्पतिवार, १९ फरवरी, १९३१

आज श्रीश्रीठाकुर की शुभ जन्म-तिथि है। दिन भर पूजा-ाठ, भजन-कीर्तन, भोग और प्रसाद-वितरण आदि से समग्र ठ आनन्द से भरपूर रहा है। हजारों स्त्री-पुरुषों ने मठ में कत्रित होकर उस आनन्द का मजा लिया।

"जय रामकृष्ण, जय प्रभु, जय भगवान, आज बड़ा शुभ देन है। वे अपनी अहेतुकी कृपा के कारण इस धरा-धाम पर भवतीर्ण हुए थे। इस प्रकार और कभी हुआ नहीं। उनकी या से समस्त पृथ्वी की रक्षा हो गई। इस प्रकार और कभी हुआ नहीं"— इत्यादि अनेक प्रकार की भावपूर्ण बातें महा-पुरुषजी सवेरे से ही अपने मन-ही-मन कर [illegible]

आते ही महापुरुषजी ने कहा, "कौन राजा, कौन रानी — यह सब कुछ मैं नहीं जानता। एकमात्र नारायण ही सत्य है, एकमात्र वे ही हैं। ठाकुर ही सब है। जीव-जगत् के कल्याण के लिए वे आए हैं। इस बात के प्रचार के लिए ही तो यह शरीर अभी भी बचा हुआ है। नहीं तो यह क्यों रहता? मुझे तो और कोई कामना-वासना नहीं। जितने दिन यह शरीर है, उनकी वाणी का प्रचार करूँगा — जीवन का यही एकमात्र व्रत है। जब तक उनका कार्य होगा, तब तक यह शरीर रहेगा।"

दो अमेरिकन महिला भक्त उनके दर्शन करने के लिए आई और कुशल-प्रश्न आदि पूछे। उत्तर में महापुरुषजी ने अँगरेजी में कहा, "आज मैं बहुत अच्छी तरह हूँ। अहा! सारी पृथ्वी आज आनन्द-मग्न है। आज के दिन प्रभु इस जगत् में अवतीर्ण हुए थे। मेरे हृदय में कैसी अनुभूति हो रही है, उसे तुम लोगों के समक्ष प्रकट नहीं कर सकता। आज का कैसा शुभ दिन है! इतनी बड़ी विराट् आध्यात्मिक शक्ति पहले कभी भी जगत् में अवतीर्ण नहीं हुई थी। समग्र जगत् तर जायगा। ठाकुर कौन थे और वे जगत् को क्या दे गए — इस बात को समझने में अभी भी सैकड़ों वर्ष लगेंगे।"

रात में माँ काली की पूजा होगी। पूजा में बैठने से पूर्व पुजारी महाराज महापुरुषजी को प्रणाम करने आए और उनकी अनुमति और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। इस पर महापुरुष महाराज बोले, "बहुत अच्छा, बड़ी भक्ति के साथ माँ की पूजा करो बच्चा। आज माँ का विशेष आविर्भाव है। माँ की शक्ति से ही तो यह सब है। इस युग में ठाकुर के भीतर से ही होकर उनकी शक्ति खेल कर रही है। ठाकुर तो और कोई

नहीं हैं। वे माँ काली ही ठाकुर के रूप में जगत् में अवतीर्ण हुई थी। जब उनकी बातें सोचता हूँ, तो कभी-कभी मन में होता है, अरे बाबा, किनके पास था! स्वयं भगवान, साक्षात् जगज्जननी के पास था! हम लोगों का जीवन धन्य हो गया है। जिन लोगों ने ठाकुर को नहीं देखा किन्तु हम लोगों को देखा है, उनका भी कल्याण होगा। हम लोग तो ठाकुर के ही अंश हैं।"

## बेलुड़ मठ

शुक्रवार, २० फरवरी, १९३१

कल श्रीश्रीठाकुर की तिथि-पूजा और उत्सव आदि समारोह के साथ सम्पन्न हो गया। कल समस्त दिन-रात म पुरुष महाराज में जो भगवद्भाव की प्रबलता देखी गई थी, आज भी बहुत अंश में विद्यमान है। महामाया की पूजा-अर्च पाठ और भजन आदि से सारी रात पूरा मठ गूँजते रहा। : रात्रि में पूजा समाप्त होने पर होम हुआ। उसी होमाग्नि फिर बाद में विरजा होम और ब्रह्मचर्य होम हुआ, तथा म पुरुषजी ने सात ब्रह्मचारियों को पवित्र संन्यास-धर्म में और ते त्यागी-मुमुक्षुओं को ब्रह्मचर्य-व्रत में दीक्षित किया। यद्यपि व उन्हें बहुत शारीरिक परिश्रम हुआ था, फिर भी ऊपर से वे तनि भी थके नहीं मालूम पड़ते थे। हृदय के दिव्य आनन्द से उन मुखमण्डल प्रदीप्त दिखाई दे रहा था।

सबेरे काली-पूजा का सभी प्रकार का प्रसाद उनके साम लाया गया। अत्यन्त भक्तिभाव से ोनों आँखें मूँदकर हाथ जो

उन्होंने उस महाप्रसाद को प्रणाम किया और सभी प्रसाद को उँगली से स्पर्श कर जीभ मे छुआया। और साथ-साथ कातर प्रार्थना करने लगे, "माँ करुणामयी, माँ, माँ, जगत् का कल्याण करो माँ।" उनकी करुणापूर्ण प्रार्थना की ध्वनि वहाँ के सभी उपस्थित भक्तों के हृदय मे अन्तस्तल तक प्रवेश करने लगी।

बाद मे नवदीक्षित संन्यासी और ब्रह्मचारीगण प्रणाम करने के लिए आए। किसका क्या नाम हुआ है, यह उन्होंने सभी से पूछा और प्रत्येक का नाम सुनकर आनन्द प्रकट करने लगे। फिर एकाएक बहुत गम्भीर होकर बोले, "नाम-रूप यह सब बाहरी है, सभी अनित्य है — दो दिन का है, यह सब कुछ भी नहीं है। नाम-रूप से परे जाना होगा, उस परमानन्द का लाभ करना होगा, आत्मवस्तु का लाभ करना होगा। संन्यास का अर्थ भी तो वही है। विरजा होम करके शिखा-सूत्र का त्याग कर गेरुआ वस्त्र पहनना और संन्यासी होना तो सरल है। वैसा व्यक्ति तो प्रवर्तक संन्यासी मात्र है; किन्तु सच्चा संन्यासी होना बहुत कठिन है। महावाक्य का नित्य ध्यान करो। जाओ बच्चा, अब बहुत ध्यान लगाओ। आत्म-वस्तु का अनुभव करो। तभी ठाकुर के संघ में आना, संन्यास लेना, यह सब सार्थक होगा। मेरी बात सुनना चाहो, तो यही है।"

नवदीक्षित संन्यासियों के आशीर्वाद की याचना करने पर वे हृदय खोलकर आशीर्वाद देते हुए बोले, "तुम लोगों ने त्यागीश्वर ठाकुर का आश्रय लिया है — देह, मन, प्राण सब कुछ उनके श्रीचरणों में अर्पित कर दिया है। तुम लोग हमारे परम प्रिय हो। मै बहुत-बहुत प्रार्थना करता हूँ, तुम लोगों को

भगवान में अनल-अटल भक्ति-विश्वास हो। प्रभु के नाम पर जो गेरुआ वस्त्र तुम लोगों ने धारण किया है, जीवन की अन्तिम घड़ी तक उस गेरुए की मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए प्रभु की सेवा किए जाओ। वे कल्पतरु हैं; उनसे सब प्रेम-भक्ति की याचना करो, ब्रह्मविद्या की याचना करो। वे सब कुछ देंगे, परिपूर्ण कर देंगे। तुम लोगों के लिए उन्हें कुछ भी अदेय नहीं है। देवीसूक्त में है —

'अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥'*

वे स्वयं ही, कृपा के वशीभूत हो, देवता और मनुष्यों से प्रार्थित उस ब्रह्मतत्त्व का उपदेश देती हैं। और जिसे चाहती हैं, उसे वे अपने कृपाकटाक्ष से ब्रह्मा, ऋषि इत्यादि कर देती हैं। वे तो कृपा करने के लिए हाथ बढ़ाए ही हुई हैं; चाहने से ही देती हैं।"

इसके बाद वे इस श्लोक को बारम्बार दुहराने लगे—

'न धनं न जनं न च सुन्दरीं, कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे, भवतात् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥'†

तदनन्तर संन्यासीगण मधुकरी करने के लिए कहाँ

---

* देवों और मनुष्यों से प्रार्थित इस ब्रह्मतत्त्व को मैं स्वयं ही कहती हूँ। मैं जिस-जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ, उनको सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ। किसी को ब्रह्मा, किसी को ऋषि और किसी को प्राज्ञ एवं मेधावी बना देती हूँ।

† हे जगदीश! मैं धन, जन, सुन्दरी स्त्री, यहाँ क्या सर्वज्ञत्व भी नहीं चाहता। मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि जन्म-जन्म तुममें मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।

ाएँगे — इस सम्बन्ध में दो-चार बातें होने के बाद वे बोले, 'पर गेरुआ वस्त्र धारण करने पर बहुत सुन्दर दिखाई देता है। ाहर का गेरुआ ही सर्वस्व नहीं है बच्चा, आभ्यन्तर यदि रँग ाको, तभी होगा। वही असल चीज है।"

लगभग ११ बजे उन्होंने एक सेवक से कहा, "ओह, कल ा बड़ा दिन बीता है! जिस प्रकार वृन्दावन में श्रीकृष्ण, पिलवस्तु में बुद्धदेव और नदिया में श्रीगौरांग आए थे, उसी कार इस युग में ठाकुर आए हैं। काल-माहात्म्य भी मानना ड़ता है। अहा! भागवत में श्रीकृष्ण के जन्म आदि का र्णन कितना अद्भुत है! सब मधुमय, सब आनन्दमय! सभी शाएँ, आसमान, नगर, ग्राम, चारागाह, वृक्ष-लता, झाड़ी आदि भी मंगलमय हैं। चारों दिशाएँ शान्त हैं। कितना सुन्दर र्णन है!" यह कहते-कहते उन्होंने सेवक को भागवत से ृष्ण का जन्म पढ़ने के लिए आदेश दिया।

## बेलुड़ मठ

### १९३१

महापुरुष महाराज का शरीर इतना दुर्बल है कि उन्हें ो दूसरे की सहायता बिना खाट से नीचे उतरने में भी कष्ट ा है। रात्रि में प्रायः नींद नहीं आती। इसलिए रात में भी रपन चारी बाँधकर सतत [illegible] । वे सारी भगवद्भाव में विभोर रहते [illegible] सेवक 'पचनामृत,' [illegible] ग्रन्थों [illegible] दिशी [illegible] तन्मय

होकर सुनते हैं। किसी समय तो चुपचाप ध्यानस्थ होकर रहते हैं, अथवा श्रीश्रीठाकुर के पास हाथ जोड़कर समग्र जगत् के कल्याण के लिए कातर प्रार्थना करते हैं। अहा, उस समय उनकी वाणी कितनी आवेग-भरी रहती है! कभी-कभी किसी देवी-देवता के चित्र को हृदय पर रखकर सो रहते हैं। सारे समय किसी दिव्य भाव में ही मग्न रहते हैं। सेवक यदि कभी पूछते हैं, "महाराज, थोड़ा सोएँगे नहीं?" तो कहते हैं, "मेरे लिए अब नींद क्या रे?" और साथ ही स्वरसहित गाने लगते हैं—

'घुम भेंगेछे आर कि घुमाइ जोगे जागे जेगे आछि।
एबार जोग निद्रा तोरे दिये माँ, घुमेरे घुम पाड़ायेछि।
एबार आमि भालो भाव पेयेछि, भालो भावीर काछे भाव शिखेछि॥
जे देशे रजनी नेइ माँ, से देशेर एक लोक पेयेछि।
आमार किवा दिवा किवा सन्ध्या, सन्ध्यारे वन्ध्या करेछि॥'*

एक समय निद्रा के प्रसंग में उन्होंने कहा था, "चण्डी में है कि माँ ही निद्रारूपिणी है—'या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।' वे सभी की अधिष्ठानस्वरूपिणी हैं, समस्त चराचर को जोड़े रहती हैं। उन्हें छोड़कर और कुछ भी नहीं है। 'आधारभूता जगतस्त्वमेका'—वे माँ ही विश्व-ब्रह्माण्ड की एकमात्र आधार हैं। माँ मेरी हृदय-गुहा को आलोकित कर सारे

* मेरी नींद खुल चुकी है, अब और क्या सोऊँ। मैं तो योग-याग में जगा हुआ हूँ। इस बार योग-निद्रा तुमको देकर, ओ माँ, मैंने नींद को सुला दिया है। इस बार मैंने अच्छा भाव पाया है। अच्छे भाववाले के पास से यह भाव सीखा है। ओ माँ, जिस देश में रजनी नहीं है, वहीं का एक व्यक्ति मैंने पाया है। मेरे लिए अब दिन क्या और सन्ध्या क्या? सन्ध्या को तो मैंने वन्ध्या बना दिया है।

समय वहाँ विराज रही हैं। उनके दर्शन से ही सब थकावट दूर हो जाती है; नींद की फिर कोई आवश्यकता ही नहीं मालूम होती। जब कभी कुछ थकावट मालूम पडती है, तभी माँ के दर्शन कर लेता हूँ। बस, आनन्दम्! सब थकावट दूर हो जाती है।"

रात के लगभग तीन बजे हैं। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई है। समग्र जगत् निद्रित शिशु के समान सुषुप्ति की गोद में विश्राम कर रहा है। समग्र मठ भी मानो गम्भीर ध्यान में मग्न है। महापुरुष महाराज के कमरे में एक क्षीण विद्युत्-प्रदीप जल रहा है। वे निकटस्थ सेवक को लक्ष्य करके बोले, "देखो, गम्भीर रात में खूब जप करना। जप-ध्यान के लिए यह अत्यन्त उत्तम समय है। जप करते समय सम्भव है नींद आ जाए, तो भी जप मत छोड़ना। बाद में देखोगे, जप करते-करते थोड़ी तन्द्रा यदि आए भी, तो भी उस समय भीतर में जप ठीक चलता रहेगा। सीधे होकर जिससे बैठ सको, उस आसन में बैठना। कभी यदि अधिक नींद आए, तो आसन छोड़कर उठ जाना और खड़े-खड़े, या टहलते-टहलते जप करना। 'हाथ में काम, मुख में हरिनाम' अर्थात् चलते-फिरते, काम-काज करते-करते, सभी समय मन-ही-मन जप करते रहना। इस तरह कुछ समय तक जप किए जाओ; तब देखोगे कि मन का एक अंश सर्वक्षण जप में लगा रहेगा—एक अन्तःप्रवाही स्रोत के समान सभी अवस्था में जप चलता रहेगा। यदि बड़े प्रयत्न के साथ दृढ़निश्चय होकर दो-तीन वर्ष तक समान भाव से जप कर सको, तो बाद में देखोगे कि सब कुछ तुम्हारे अधीन हो जायगा। चण्डी में 'महारात्रि' की बात है, जानते हो? यह महारात्रि ही है साधन-भजन का उत्तम समय। उस समय एक आध्यात्मिक धारा बहती रहती है। मन

जितना सूक्ष्म होगा, उतना ही इस धारा के प्रभाव को समझ सकोगे। साधु रात में अधिक क्यों सोए? दो-एक घण्टा सोना ही यथेष्ट है। सारी रात यदि सोने में ही बिताएगा, तो जप-ध्यान कब करेगा? महानिशा में समस्त प्रकृति शान्त भाव धारण करती है। उस समय थोड़े से प्रयत्न से ही मन स्थिर हो जाता है। हृदय में उच्च भाव और उच्च चिन्ता सहज में ही आ जाती है।"

सेवक यह सुनकर अत्यन्त घबड़ाकर बोले, "महाराज, मेरा तो जप-ध्यान में उतना मन लगता नहीं। जप करने के लिए बैठते ही, कहाँ की सब व्यर्थ चिन्ताएँ आकर मन को चंचल कर देती हैं। आपकी सेवा के साथ-साथ तथा अन्य काम-काज के भीतर तो भगवान का स्मरण-मनन होता है, मन शान्त भाव धारण करता है और उसमें आनन्द भी पाता हूँ, किन्तु ज्योंही जप-ध्यान करने बैठता हूँ, त्योंही मन मानो विद्रोही हो उठता है। इस प्रकार मन के साथ बारम्बार लड़ाई करके, एक महा अशान्ति का अनुभव कर अन्त में थककर उठ जाना पड़ता है। ऐसा आगे नहीं होता था। अभी कुछ दिनों से — विशेष कर जब से आपकी सेवा करना प्रारम्भ किया है, तभी से मन की ऐ अवस्था हो गई है।"

सेवक के मन की अशान्त अवस्था की बात सुनकर म पुरुषजी कुछ देर तक चुप रहे; बाद में धीर भाव से बोले "किसी-किसी मन का इस प्रकार विद्रोही भाव रहता है। उस को भी वश में लाने का उपाय है। उस प्रकार के अशान्त को भी क्रमशः शान्त करके ध्येय-वस्तु पर एकाग्र किया सकता है। जप-ध्यान करने के लिए जब आसन पर बैठो, उ समय जप या ध्यान प्रारम्भ मत करना। प्रारम्भ में धीर भ

से बैठकर ठाकुर के समीप कातर प्रार्थना करना। ठाकुर हैं जीवन्त समाधिस्वरूप। उनके पास आन्तरिक प्रार्थना करके उनका चिन्तन करने से ही मन स्थिर हो जायगा। कहना, 'हे प्रभु, मेरे मन को स्थिर कर दो, मेरे मन को शान्त कर दो।' इस प्रकार कुछ देर प्रार्थना करके ठाकुर की समाधि की बात का चिन्तन करना। उनका जो चित्र देखते हो, यह चित्र बड़ी उच्च समाधि-अवस्था का है। साधारण मनुष्य इस चित्र का कोई तात्पर्य नहीं समझ सकता। बाद में चुपचाप बैठकर मन को देखते रहना कि मन कहाँ जाता है। तुम तो मन नहीं हो। मन तुम्हारा है, तुम मन के अधीन नहीं हो—तुम स्वतन्त्र हो, आत्मस्वरूप हो। धीर भाव से द्रष्टा के समान बैठकर मन की गति-विधि का लक्ष्य करते जाना। काफी समय तक इधर-उधर भागने के बाद मन आप ही थक जायगा। तब मन को पकड़कर ठाकुर के ध्यान में लगा देना। जब-जब मन भागे, तब-तब उसे पकड़कर ले आना। इस प्रकार करते-करते देखोगे कि मन धीरे-धीरे शान्त हो जायगा। तब बड़े प्रेम के साथ भगवान का जप करना, उनका ध्यान करना। कुछ दिनों तक ठीक जैसा बताया है, वैसा ही करते जाओ। देखोगे कि मन तुम्हारे वश में आ गया है। परन्तु बड़ी निष्ठा के साथ नित्य नियमित भाव से यह करना होगा।"

सेवक—"अपने मन की जैसी अवस्था मैं देख रहा हूँ, उससे आशा तो नहीं कि साधन-भजन कुछ हो सकेगा। फिर भी, आपके आशीर्वाद का सहारा है।"

महापुरुषजी [illegible] तो
बहुत है ही। तुम [illegible] को

ही अपने जीवन का सर्वस्व बनाया है; तुम लोगों पर आशीर्वाद नहीं रहेगा तो और किस पर रहेगा? पर तुम्हें भी परिश्रम करना होगा। ठाकुर कहते थे — 'कृपा-समीर तो बह ही रहा है, तू केवल अपना पाल उठा दे न।' यह पाल उठाने का अर्थ है स्वयं चेष्टा करना — यत्न करना। ऐकान्तिक अध्यवसाय और पुरुषकार चाहिए — विशेष कर सत्कार्य के लिए, साधन-भजन के लिए। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सिंह-बल प्रकट करना होगा। उद्यम बिना, पुरुषकार बिना कुछ होने का नहीं। पाल उठा देने पर उसमें कृपा-समीर लगेगा ही। जब तक मनुष्य में अहं-बुद्धि है, तब तक अध्यवसाय रखना ही होगा। तुम लोग साधु हुए हो, माँ-बाप, घर-द्वार आदि सब क्यों छोड़कर आए हो? इसी लिए न कि भगवान का लाभ करोगे? पूर्वजन्मार्जित बहुत सुकृत के प्रभाव से, भगवान की कृपा से ठाकुर के आश्रय में आ पाए हो, उनके पवित्र संघ में स्थान पाया है; विशेषतः हम लोगों के समीप सर्वक्षण रहने का सुयोग भी ठाकुर ने कर दिया है। इतना सब सुयोग प्राप्त होने पर भी यदि जीवन का लक्ष्य भ्रष्ट हो जाय, तो इससे बढ़कर शोक की बात और क्या हो सकती है? मन में खूब बल लाना। उनका पतितपावन नाम लेकर इस भव-समुद्र को पार कर रहे हो; यदि जरा उत्ताल तरंग देखकर भय से पीछे हटकर पतवार छोड़ दोगे, तो कैसे बनेगा? यह सब तो महामाया की विभीषिका है। यह सब दिखलाकर वे साधक की परीक्षा लेती हैं। उस सबसे जब साधक का मन विचलित नहीं होता, जब वह दृढ़प्रतिज्ञ होकर सुमेरु के समान अचल-अटल बना रहता है, तब महामाया प्रसन्न होकर मुक्ति का द्वार खोल देती हैं। वे प्रसन्न हुई कि सब हो गया। चण्डी में है — 'सैषा प्रसन्ना वरदा

भवति मुक्तये।'* बुद्धदेव की जीवनी में क्या पढ़ा नहीं? बुद्धदेव को भी महामाया ने मार के रूप में कितनी विभी- दिखलाई थी, किन्तु उन्होंने बिलकुल दृढ़प्रतिज्ञ हो आसन बैठकर संकल्प किया —

'इहासने शुष्यतु मे शरीरं, त्वगस्थिमांस प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभां, नैवासनात् कायमतश्चलिष्यते॥'

तु 'इस आसन पर मेरा शरीर सूख भी क्यों न , त्वचा, हड्डी, मांस सब गल क्यों न जायें; किन्तु बहु- दुर्लभ तत्त्वज्ञान को बिना पाए इस आसन पर से मेरा शरीर का नहीं!' कैसा दृढ़ संकल्प है! अन्त में माँ ने प्रसन्न निर्वाण का द्वार उन्मुक्त कर दिया और बुद्धदेव बुद्धत्व कर धन्य हो गए। ठाकुर के जीवन में भी वैसा ही हुआ इसी लिए कहता हूँ बच्चा, बहुत चेष्टा करो, दृढ़प्रतिज्ञ साधन-भजन में लग जाओ। मन स्थिर नहीं रहता इस जप-ध्यान छोड़ देने से कैसे चलेगा? हमी लोगों का जीवन । ठाकुर की प्रत्येक सन्तान का ही जीवन कठोर साधना जीवन्त आदर्शस्वरूप है। महाराज, हरि महाराज, योगेन ज† इन सबों ने कितनी कठोर तपस्या की है! फिर उन्होंने क्षात् युगावतार ठाकुर की अविच्छिन्न कृपा प्राप्त की थी। तो इच्छा मात्र से ही सभी को ब्रह्मज्ञान दे सकते थे, मात्र से ही समाधिस्थ कर दे सकते थे; किन्तु फिर उन्होंने हम लोगों से कितनी कठोर साधना कराई

---

* यह महामाया ही प्रसन्न होकर मनुष्यों को मुक्ति का वरदान ।

† भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी योगानन्द।

थी। भगवान की कृपा होने से साधन का पथ भी सुगम हो जाता है, विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं। भगवान देखते हैं हृदय, देखते हैं आन्तरिकता। व्याकुल होकर, रो-रोकर पुकारने से ही वे दर्शन देते हैं। यह जो दया करके वे दर्शन देते हैं, यही उनकी कृपा है। वे तो हैं स्वाधीन, स्वतन्त्र। वे क्या किसी साधन-भजन के वश में हैं, जो इतना जप करने पर, इतना ध्यान करने पर, इतनी कठोरता आदि करने पर आकर दर्शन देंगे? सो बात नहीं है। तब फिर साधन का अभिप्राय क्या है?— एकमात्र उन्हीं को चाहना — संसार छोड़कर, मान-यश, देह-सुख, इतना ही क्या अपना अस्तित्व भी भूलकर, इहकाल और परकाल सब कुछ भूलकर एकमात्र उन्हीं को चाहना। जो इस प्रकार से भगवान को पाना चाहेगा, उसे वे कृपा करके दर्शन देंगे। वे असीम कृपा करके दर्शन देते हैं, इसी कारण जीव उनको देख पाता है; यही है उनकी कृपा। यदि वे दया करके दर्शन न दें, तो जीव की क्या सामर्थ्य जो उनके दर्शन पा सके? वे जैसे भक्तवत्सल हैं, वैसे ही कृपासिन्धु भी हैं।"

सेवक —" एकमात्र भरोसा यही है कि आप लोगों का आश्रय मिला है; जिससे मेरा ठीक-ठीक कल्याण हो जायगा, आप लोग वही कर देंगे। एक बार जब आश्रय दे चुके हैं, तो फिर त्याग तो करेंगे नहीं।"

महापुरुषजी —" ठाकुर बड़े आश्रितवत्सल हैं; शरणागत-पालक हैं। वे एक बार जिसका हाथ पकड़ लेते हैं, उसे फिर इस भवसागर में डूबने का कोई भय नहीं। चण्डी में है —
'...ामाश्रितानां न विपन्नराणां, त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति'—
'तुम्हारे आश्रित मनुष्यों की विपत्ति दूर हो जाती

## बेलुड़ मठ
### १९३१

महापुरुष महाराज ने एक दिन संन्यासी के कर्तव्य के सम्बन्ध में कहा था, "साधु उठेगा बहुत सवेरे। प्रातः तीन-चार बजे के बाद और अधिक नहीं सोएगा। और साधु उस समय भला सोएगा कैसे? ठाकुर को देखा है, वे तीन बजे के बाद फिर कभी नहीं सोते थे, भगवान का नाम लेते रहते थे। साधु को जल्दी स्नान कर लेना चाहिए। स्नान करके ध्यान-धारणा आदि करे। स्नान करने के बाद तुरन्त भोजन न करे। स्नान के बाद जप-ध्यान किए बिना तो दूसरे लोग भोजन करते हैं, साधु वैसा न करे। साधु की आकृति, बातचीत आदि सभी अन्य प्रकार की होनी चाहिए — सरल, सुन्दर, देवोपम। साधु रुपया क्यों रखेगा? साधु बिलकुल निर्भरशील रहे — ठाकुर हैं, वे ही देखेंगे। साधु साफ-सुथरा रहे, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि विलासी हो। त्याग के पथ पर जो रहेगा, उसके लिए विलासिता ठीक नहीं। साधु रात में अधिक भोजन न करे। ठाकुर कहते थे — रात का खाना तो जलपान के समान होना चाहिए। साधु मूर्ख न हो, वह विद्या-चर्चा करे। साधु का स्वास्थ्य अच्छा रहे। साधु मिष्टभाषी, धीर एवं स्थिर रहे; अच्छा व्यवहार करे। साधु सर्वदा कामिनी-कांचन से दूर रहे। कामिनी-कांचन के साथ तनिक भी संसर्ग-सम्पर्क न रखे।"

## बेलुड़ मठ

**सोमवार, ८ फरवरी, १९३२**

आज श्रीश्रीमहाराज ( स्वामी ब्रह्मानन्दजी ) की जन्म-तिथि है। बड़े सवेरे नींद खुलते ही महापुरुषजी ने श्रीश्रीठाकुर, माँ और स्वामीजी को प्रणाम किया और फिर महाराज के चित्र के सामने प्रणाम किया, और बीच-बीच में "जय राजा महाराज की जय" कह रहे हैं।

श्रीश्रीठाकुर की मंगल-आरती के बाद पूजा-घर में प्रभाती ...रही है। आज सोमवार है, इसी लिए शिवजी के गीत गाए जा... ...राज की जन्म-तिथि होने के कारण महापुरुषजी ने ...यक गान गाने के लिए आदेश भेजा। तदनुसार 'जागो ...' इत्यादि गान हो रहे हैं। अन्त में 'केशव कुरु कुंजकाननचारी' गाना गाया गया। गाने सुनकर ...को बड़ा आनन्द हुआ।

...धीरे प्रातःकाल हो गया। महापुरुषजी के कमरे में ...ही है। मठ के साधु और भक्तगण आकर एकत्रित हो... भी सबके साथ सानन्द बातचीत कर रहे हैं। वे बोले, ...न अच्छा दिन है, महाराज का जन्म-दिवस है। वे ...थे। बहुत काल के बाद इस प्रकार की उच्च आध्यात्मिक अनुभूति से सम्पन्न महापुरुष इस संसार में आते हैं—जगत् के कल्याण के लिए। समस्त पृथ्वी उनके चरण-स्पर्श से धन्य हो जाती है। वे क्या कोई कम आधार थे? वे थे ईश्वर-कोटि, श्रीभगवान के पार्षद, ठाकुर के मानस-पुत्र।

"ठाकुर के श्रीमुख से सुना था कि राखाल * महाराज के दक्षिणेश्वर आने से कुछ पहले एक दिन ठाकुर बैठे हुए थे। इसी समय माँ (जगन्माता) एकाएक एक बालक को उनकी गोद में बिठाकर बोलीं, 'यह तेरा पुत्र है।' ठाकुर तो यह देखकर भय से सिहर उठे। माँ से बोले, 'मेरा भला कैसा पुत्र? मैं तो संन्यासी हूँ।' तब माँ ने हँसते-हँसते कहा, 'यह सांसारिक पुत्र नहीं, मानस-पुत्र है।' तब कहीं ठाकुर निश्चिन्त हुए। उसके बाद जब राखाल महाराज पहले-पहल दक्षिणेश्वर आए, तो ठाकुर उन्हें देखते ही पहचान गए। महाराज भी ठाकुर के साथ ऐसा व्यवहार करने लगे, मानो ठीक पाँच वर्ष के बालक हों। वे ठाकुर से कितना हठ करते थे, कितना मान-अभिमान करते थे! कभी तो ठाकुर की गोद में पीठ टेककर बैठ जाते। और भी कितना सब करते थे। वह एक अद्भुत दृश्य था! वह सब था ईश्वरीय व्यापार। लौकिक दृष्टि अथवा लौकिक बुद्धि से उस सबका कुछ भी नहीं समझा जा सकता।"

थोड़ी देर बाद महाराज के मन्दिर में उनकी प्रिय विविध वस्तुओं का भोग दिया गया। महापुरुषजी ने वही प्रसाद उँगली के अग्रभाग द्वारा भक्तिपूर्वक ग्रहण किया और कहा, "महाराज स्वयं अनेक प्रकार का भोजन पसन्द करते थे और दूसरों को खिलाना भी उन्हें बड़ा अच्छा लगता था। अहा! वे जब मठ में आते, तो मानो आनन्द का मेला लग जाता — कितने लोग आते थे! साधु-भक्तों को लेकर जप-ध्यान, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, हास-परिहास, खाना-पीना सदैव होता रहता था — मानो आनन्द की लहरें उमड़ रही हों। वह भी एक समय बीता है! महाराज

* स्वामी ब्रह्मानन्दजी का पूर्व नाम।

समान प्रबुद्ध पुरुष के संग में ही लोगों को इतना आनन्द
ना सम्भव है।"

बातचीत करते-करते महापुरुषजी ने महाराज का एक
चित्र देखना चाहा। चित्र आ जाने पर उन्होंने उसे सिर से
गाया और हृदय पर रख लिया। फिर एकटक उस चित्र की
र देखकर बोले, "देखो, देखो, कैसा राजा के समान चेहरा
! कैसी आँखें और कैसा मुख! चाहे बैठे हों, चाहे खड़े —
खने में ठीक जैसे राजा हों। इसी लिए तो स्वामीजी उन्हें
राजा' कहकर पुकारते थे। 'यह देखो राजा,' 'राजा को
दे,' 'राजा को बुलाओ,' 'राजा से कहो,' 'राजा का
ठ,' इत्यादि कहते थे। स्वामीजी ने ही यह नाम रखा था।
हाराज ही का तो यह मठ है, हम लोग भला क्या हैं? इस
ठ के लिए उन्होंने कितना किया, कितना कष्ट उठाया! एक-
क ईंट में महाराज की स्मृति जड़ी हुई है। उन्होंने हृदय के
क्त को पानी बनाकर यह सब किया है। अब भी सब कुछ वे
ी कर रहे हैं। मैं तो उनका नौकर हूँ — उनकी पादुकाएँ
िर पर धारण कर यहाँ बैठा हूँ। भरत ने जिस प्रकार
ीरामचन्द्रजी की पादुकाएँ सिंहासन पर आसीन कर राज्य-शासन
किया था, उसी प्रकार मैं भी महाराज की पादुकाएँ सिर पर
रखकर उनका काम किए जा रहा हूँ। वे जैसी बुद्धि देते हैं,
ैसा ही करता हूँ। अहा, स्वामीजी की महाराज पर कितनी
श्रद्धा थी, कितना प्रेम था! ठीक 'गुरुवत् गुरुपुत्रेषु'— यही
ाव था।"

थोड़ा ठहरकर फिर सबको लक्ष्य कर कहने लगे, "महा-
राज कौन हैं, बताओ तो? वे व्रज के राखाल (गोप) हैं।

ठाकुर कहते थे कि अन्तिम समय उसे अपने सच्चे स्वरूप के दर्शन होंगे। ठाकुर ने जो कहा, वह हुआ भी। अन्तिम समय महाराज अनेक प्रकार के दर्शनों की बात कहने लगे, 'मैं व्रज का राखाल हूँ, मुझे नूपुर पहना दो, मैं कृष्ण का हाथ पकड़कर नाचूँगा। अरे, तुम लोग अपनी आँखें तो खोलो, देख नहीं रहे हो — कमल पर खड़े मेरे कृष्ण को!' इत्यादि इत्यादि। इन सब दर्शनों की बात जब वे कहने लगे, तो हम लोगों ने समझ लिया कि बस, अब महाराज का शरीर और अधिक नहीं रहेगा।"

महापुरुषजी मानो आज महाराज के भाव में एकदम विभोर हैं। फिर कह रहे हैं, "महाराज ने कितनी तपस्या की थी! वे तो ठाकुर के स्नेह-पात्र राखाल थे, किन्तु फिर भी कितनी कठोरता उन्होंने की थी! उनका सब काम लोक-शिक्षा के लिए था। एक बार हरि महाराज और वे एक साथ तपस्या करते थे। दोनों पास-पास की कुटियों में रहते थे, लेकिन तपस्या में वे इतने मग्न थे कि दोनों में बिलकुल बातचीत नहीं होती थी। बीच-बीच में कभी भेंट हो जाती थी, पर दोनों ही अपने-अपने भाव में इतने मस्त रहते थे कि बातचीत करने योग्य मनोदशा किसी की भी नहीं थी। कभी-कभी तो लगातार बीस-बाईस दिन तक आपस में कोई बातचीत नहीं होती थी, यद्यपि दोनों में इतना स्नेह था!"

## बेलुड़ मठ

### बृहस्पतिवार, १८ फरवरी, १९३२

ब्राह्म-मुहूर्त है। नीरव निस्पन्द प्रकृति के बीच समस्त जगत् मानो ध्यान-मग्न हो रहा है। प्रशान्त आकाश की छत्र-छाया में मन्दिर ध्यान-मौन है। समीप मे ही पुण्यसलिला भागीरथी धीर गति से प्रवाहित हो रही है। भीनी-भीनी बयार बह रही है। मठ में उषा के झुटपुटे में संन्यासीगण धीरे-धीरे कदम रखते हुए निःशब्द अपने-अपने ध्यान आदि के लिए जा रहे हैं। सभी अन्तर्मुख हैं। महापुरुष महाराज भी अपनी शय्या पर बहुत देर से उठकर बैठे हुए हैं। उनका मन किस आनन्द-लोक में विचरण कर रहा है, कौन जाने ?

कुछ समय बीत गया। उषा के मंगलस्पर्श से पूर्वाकाश रक्तिमाभ और ईषत् उज्ज्वल हो उठा है। विहगावली ने मानो ईश्वरीय गुणगान प्रारम्भ कर दिया है। श्रीश्रीठाकुर के मन्दिर में मंगलशंख ने मंगल-आरती की सूचना दे दी। मगल-आरती के बाद पूजा-घर में प्रभाती आरम्भ हो गई। आज सोमवार है, अतएव श्रीशिवजी के भजन गाए जा रहे हैं। एक साधु ने शिवभक्त देवीसहाय-रचित, महापुरुष महाराज के विशेष प्रिय दो गाने गाए — 'गंगाधर महादेव सुन पुकार मेरी' तथा 'अब शिव पार करो मेरी नइया।' फिर सबके अन्त में 'योगासने महाध्याने मग्न योगिवर'* यह गाना गाया। गान के मधुर स्वर से समस्त मठ गूँज उठा। गान सुनते-सुनते महापुरुषजी गम्भीर ध्यान में मग्न हो गए — स्पन्दहीन, निर्निमेष।

* योगिवर शिव योगासन में बैठे महाध्यान मे मग्न हैं।

कुछ समय बाद ध्यान टूटा, किन्तु महापुरुषजी का मन उस समय भी मानो शिवानन्द-सागर में डूबा हुआ है। कभी अस्फुट स्वर में कहते हैं "ॐ नमः शिवाय" अथवा "हरि ॐ तत् सत्" और कभी "बम बम महादेव" कह रहे हैं। इस बीच में मठ के अनेक साधु-ब्रह्मचारी महापुरुषजी के कमरे में आ गए हैं। वे भी क्रमशः प्रकृतिस्थ होकर धीरे-धीरे बातचीत कर रहे हैं। गिरीश बाबू रचित अन्तिम गान के सम्बन्ध में ही बात चल रही है। महापुरुषजी बोले, "अहा! गिरीश बाबू ने कैसा सुन्दर गान रचा है!" यह कहकर स्वरपूर्वक उसी को गाने लगे। उसके बाद कह रहे हैं, "ठाकुर की दया बिना ऐसा कभी नहीं होता। यह गान उन्होंने मानो साक्षात् शिव के दर्शन करते-करते लिखा है। कैसा सुन्दर गम्भीर भाव है! 'काल बद्ध वर्तमाने व्योमकेश व्योम पाने'†। यह गम्भीर ध्यान की अवस्था है। ध्यान बहुत गम्भीर होने पर फिर भूत-भविष्य का ज्ञान नहीं रह जाता। एकमात्र वर्तमान का ही ज्ञान रहता है—वह भी अस्पष्ट रूप से। इसी लिए कहा है, 'काल बद्ध वर्तमाने।' अतीत अथवा अनागत का बोध उस समय नहीं रह जाता। केवल वर्तमान ही प्रतिभात होता रहता है। अवश्य, मन जब पूर्णतया समाधि में लीन हो जाता है, तब वर्तमान का भी कोई ज्ञान नहीं रहता। वह त्रिकालातीत अवस्था होती है। उस अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी लिए स्वामीजी ने कहा है, 'अवाङ्मनसगोचरं बोझे प्राण बोझे जार।'* यह साधारण

---

† काल वर्तमान में बद्ध था और व्योमकेश (शिव) ध्यान में मग्न थे।

* वह मन और वाणी से परे है। उसे वही जानता है, जिसने उसका अनुभव किया है।

अवस्था की बात नहीं है। समाधि से उतरने पर समाधि के आनन्द को प्रकट करने के लिए भाषा ढूँढ़े नहीं मिलती। ठाकुर को हम लोगों ने देखा है, वे निर्विकल्प समाधि से उतरते समय—जब उनका मन थोड़ा उतर जाता था, किन्तु फिर भी भावावेश बहुत बना रहता था—उस अवस्था का जब वर्णन करने की चेष्टा करते, तो कर नहीं पाते थे। अन्त में कहते, 'मेरी तो इच्छा होती है कि सबसे कहूँ, किन्तु कह नहीं पाता—जैसे किसी ने मुँह बन्द कर दिया हो।' वास्तव में उस अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। 'बोझे प्राण बोझे जार' (उसे वही समझ सकता है, जिसने उसका हृदय में अनुभव किया है)।"

प्रभात में जो साधु पूजा-घर में भजन कर रहे थे, वे महापुरुषजी को प्रणाम करने आए। उन्हें देखकर महापुरुषजी ने कहा, "देखो, जब कभी ठाकुर के सामने शिव के गीत गाओ, तो अन्त में दो-एक गाने माँ के भी अवश्य गाना। यह विशेष रूप से ध्यान रखना कि कोई भी देवी-विषयक एक-दो गाने गाकर तब भजन समाप्त करना। तुम लोग तो जानते नहीं, इसी लिए कहे दे रहा हूँ। सदैव यही भाव लेकर गाने गाना कि ठाकुर को ही गाना सुना रहे हो और वे तुम्हारा गाना सुन रहे हैं। ठाकुर लगातार शिव के गान नहीं सुन सकते थे। एक दिन दक्षिणेश्वर में एक बड़े गायक ठाकुर को गाना सुनाने आए। बड़े उस्ताद थे और बहुत सुन्दर गाते थे। उन्होंने पहले से ही शिव-विषयक गाने गाना शुरू कर दिया। ठाकुर तो दो-एक गाने सुनने के बाद ही समाधिस्थ हो गए—बिलकुल निर्विकल्प समाधि हो गई। हम लोगों ने कभी ठाकुर को इस प्रकार समाधिस्थ होते नहीं देखा था। उनका मुख बिलकुल लाल हो गया; और समाधि की दिव्य-

आभा मुखमण्डल पर फैल गई। शरीर अपेक्षाकृत बड़ा दिखाई देने लगा। और कैसा रोमांच! वह कैसा दृश्य था, वह कैसे बतलाऊँ! इस प्रकार बहुत समय निकल गया, पर समाधि नहीं टूटी। उधर गान भी चल रहा है, और सभी आश्चर्य-चकित हो एकदम चुप बैठे हैं। ठाकुर की इतनी गम्भीर समाधि और उनका इस प्रकार रूप प्रायः दिखाई नहीं पड़ता था। काफी देर बाद ठाकुर एकाएक 'उः' 'उः' कर उठे। भीतर मानो असह्य यन्त्रणा हो रही हो। फिर अत्यन्त कष्टपूर्वक बोले, 'शक्ति गा।' हम लोग समझ गए कि वे शक्ति-विषयक गान सुनना चाहते हैं। तत्क्षण ही गायक से माँ का गान गाने के लिए कहा गया। फिर माँ का नाम गाया जाने लगा। तब कहीं धीरे-धीरे ठाकुर का मन सहज अवस्था में आया। बाद में उन्होंने बतलाया था कि उस दिन उनका मन बहुत गम्भीर समाधि में डूब गया था, किसी भी प्रकार वे मन को नीचे नहीं ला सक रहे थे। ठाकुर अधिक काल तक निर्विकल्प अवस्था में रहना नही चाहते थे। वे तो आए थे जगत् के कल्याण के लिए। पर निर्विकल्प अवस्था में रहने पर जागतिक कार्य तो सम्भव नहीं है। अतएव भक्तिभाव का आश्रय ले वे भक्तों के साथ रहना चाहते थे। शिव का ध्यान है निर्विकल्प अवस्था। वहाँ न यह सृष्टि है और न जीव-जगत्। ठाकुर के मन की स्वाभाविक गति ही निर्विकल्प की ओर थी। इसी कारण वे कोई छोटी-मोटी इच्छा रखकर मन को नीचे उतारे रखते थे। उनका सब कुछ अद्भुत था!"

कुछ देर चुप रहकर महापुरुषजी ने एक सेवक से पूछा, "आज तो सोमवार है, शिवमहिम्नस्तोत्र का पाठ नहीं होगा? कब होगा?"

"अभी होगा, महाराज"— कहकर सेवक ने निकटस्थ मेज पर से एक स्तोत्र की पुस्तक उठा ली और उसमें से महिम्नस्तोत्र का सस्वर पाठ करने लगे। महापुरुषजी हाथ जोड़कर बैठे हैं — आँखें बन्द हैं। पाठ हो रहा है। महापुरुषजी भी साथ-साथ दुहरा रहे हैं।

'महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्व. स्वमतिपरिमाणावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥

• • •

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

• • •

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।

जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥

• • •

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रं
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

• • •

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥ '

इन कुछ श्लोकों की आवृत्ति महापुरुष महाराज ने थोड़े उच्च स्वर से की। एक क्षण सब चुप रहे। फिर महापुरुषजी ने धीरे-धीरे कहा, "देखा है, ठाकुर शिवमहिम्नस्तोत्र पूरा नहीं सुन पाते थे। एक-दो श्लोक सुनकर ही समाधिस्थ हो जाते थे। 'असितगिरिसमं स्यात्' और 'तव तत्त्वं न जानामि'— इन दोनों श्लोकों की वे स्वयं ही बीच-बीच में आवृत्ति करते थे। 'तव तत्त्वं न जानामि' श्लोक दुहराते-दुहराते वे रो उठते थे और रोते-रोते कहते थे, 'तुम्हारा तत्त्व कौन जानेगा, प्रभु? तुम क्या हो, यह कौन जानता है? प्रभु, मैं तुम्हें जानना नहीं चाहता, तुम्हें समझना नहीं चाहता! केवल अपने श्रीपादपद्मों में मुझे शुद्धा भक्ति दो।' उन्हें भला कौन जान सकता है?"

इसके बाद इन दोनों श्लोकों का अनुवाद महापुरुषजी की आज्ञा से पढ़ा गया।

'हे ईश्वर, नील गिरि के समान यदि स्याही हो, समुद्र

दि दावात हो, कल्पतरु की शाखा लेखनी हो, पृथ्वी कागज
ो और सरस्वती यदि चिरकाल तक लिखती रहें, तो भी हे
ाथ, तुम्हारे गुणों का कभी अन्त न होगा।'

'हे महेश्वर, तुम कैसे हो, तुम्हारा तत्त्व क्या है, यह मैं
हीं जानता। हे महादेव, तुम्हारा जो भी रूप हो, उसी में
म्हें बारम्बार नमस्कार है।'

इसके बाद महापुरुषजी बोले, "योगीश्वर शिव हैं संन्यासी
 गुरु। इसी लिए स्वामीजी को बचपन से ही शिव का ध्यान
ड़ा अच्छा लगता था। शिव के समान सर्वत्यागी हुए बिना
न कभी समाधिस्थ नहीं हो सकता।"

## बेलुड़ मठ

### शुक्रवार, ४ मार्च, १९३२

शारीरिक अस्वस्थता के कारण महापुरुष महाराज चिट्ठी-
त्री आदि प्रत्येक समय स्वयं नहीं पढ़ सकते। अपराह्न काल
 एक सेवक उन्हें चिट्ठियाँ पढ़कर सुना रहे हैं; वे भी ध्यान-
र्वक सब सुन रहे हैं। एक भक्त ने बड़े दीन भाव से हृदय की
दना प्रकट करते हुए लिखा है — 'मन में बड़ी अशान्ति है।
ाधन-भजन यथाशक्ति किए जा रहा हूँ; किन्तु उससे शान्ति
हीं पा रहा हूँ। किससे प्राण शीतल होंगे, किससे उनकी कृपा
ाप्त होगी, उनके दर्शन होंगे, सो दया करके बतलाइए। मेरा
ड़ विश्वास है कि आपकी कृपा होने से ही भगवत्कृपा होगी
ौर मेरा यह मानव-जीवन धन्य हो जायगा,' इत्यादि। यह
नकर महापुरुषजी ने कहा, "अहा! यह बातें हैं। इसका

होगा। एक उपाय है—विश्वास। खूब विश्वास यदि हो कि श्रीश्रीठाकुर युगावतार हैं, स्वयं भगवान हैं, तथा उन्हीं की एक सन्तान ने मुझ पर कृपा की है, तो सब हो जायगा। उनके अवतारत्व में पूर्ण विश्वास चाहिए। वे ही तो गुरु-रूप से मेरे हृदय में विराजित हो भक्तों पर कृपा करते हैं। लिख दो—बहुत रोओ बच्चा, व्याकुल होकर रोओ। रोना छोड़ और कोई उपाय मैं नहीं जानता। प्रभु, मुझ पर कृपा करो, दर्शन दो, दर्शन दो—यह कहते-कहते बहुत रोओ। उनके लिए जितना रोओगे, उतना ही वे तुम्हारे हृदय में प्रकट होंगे। बड़े प्रेम के साथ रोओ, व्याकुल होकर रोओ। ठाकुर के श्रीमुख से सुना है—

'हरि, दिन तो गेलो, सन्ध्या होलो,
पार करो आमारे।
तुमि पारेर कर्ता, जेने वार्ता,
डाकि हे तोमारे॥

सुनि कौड़ी नाइ जार,
तारे करो हे पार।
आमि दीन भिखारी, नाइको कौड़ी,
ताइ डाकि हे कातर स्वरे॥' * इत्यादि।

"वे ही तो पार करनेवाले हैं; वे यदि कृपा करके इस भवसिन्धु से पार न करें, तो जीव की क्या सामर्थ्य, जो इससे

* हरि, दिन तो बीत गया और सन्ध्या हो गई—मुझे पार कर दो। यह जानकर कि तुम पार करनेवाले हो, मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ। मैंने सुना है (नाथ), जिसके पास कौड़ी तक नहीं, उसे तुम पार कर देते हो। प्रभु, मैं दीन भिखारी हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी तक नहीं है—इसी लिए तुम्हें कातर स्वर से पुकार रहा हूँ।

पार हो सके ? ठाकुर, तुम कितने अनन्त हो, कितने गभीर हो ! तुम्हें भला कौन समझ सकेगा ? तुम्हारी इति कोई नहीं कर सकता। तुम दया करो। दया करके अपने स्वरूप का थोड़ा सा ज्ञान करा दो — इतना होने से ही जीव का भव-बन्धन चिरकाल के लिए खुल जायगा।"

एक भक्त पट्चक्र के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। महापुरुषजी ने सेवक से कहा, "उसे लिख दो — वह सब जानने की आवश्यकता नहीं। केवल रोओ, खूब रोओ। सरल बालक के समान व्याकुल होकर रोओ और प्रार्थना करो — 'ठाकुर, मुझे भक्ति-विश्वास दो; माँ, रक्षा करो। अपने इस मायापाश से मुझे मुक्त करो।' मैं, बच्चा, इतना ही जानता हूँ। 'माँ माँ' कहते हुए खूब रोओ बच्चा, रोओ। सरल विश्वास लेकर उनके शरणागत होकर पड़े रहो — और रोओ, वे दया करेंगे ही। मैं भी बहुत प्रार्थना करता हूँ — बहुत आगे बढ़ जाओ, धर्म-राज्य में बहुत अग्रसर हो जाओ।" बाद में सेवक की ओर देखकर कहा, "तुम क्या कह रहे थे, उसका कुछ गड़बड़ है ? मैं वह सब कुछ भी नहीं जानता। अतीत जीवन में किसने क्या किया, क्या नहीं किया, मैं वह सब जानना नहीं चाहता। जो हो गया, सो हो गया; इस समय तो वह यहाँ आ गया है, ठाकुर के शरणापन्न हुआ है। उसके सभी पाप कट जायँगे, वह बच जायगा। ठाकुर हैं कपालमोचन। युगावतार के शरणागत हुआ है — यह क्या कोई कम बात है ? बहुत पुण्य यदि न होता, तो ऐसा क्या होता ? वे अवश्य उद्धार करेंगे।"

कुछ देर बाद एक भक्त आए। उन्होंने सेवा के लिए कुछ रुपए देकर . को प्रणाम किया। महापुरुषजी ने भक्त

से कहा, "रुपए देकर क्यों प्रणाम किया? मुझे रुपए की तो कोई आवश्यकता नहीं—हम लोग, बच्चा, संन्यासी हैं; रुपए लेकर क्या करेंगे? ठाकुर की कृपा से मुझे कोई अभाव नहीं। मैं प्रभु का दास हूँ। वे दया करके 'दो रोटी' दे रहे हैं।" यह कहकर गाने लगे—

'प्रभु, मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा।
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा॥
दो रोटी एक लँगोटी तेरे पास मैंने पाया।
भगति भाव और दे नाम तेरा गाया॥
प्रभु मैं गुलाम तेरा॥'

"सो वे दया करके 'दो रोटी' तो दे ही रहे हैं। फिर रुपए-पैसों को लेकर क्या होगा? ले जाओ बच्चा, इन रुपयों को। तुम लोग गृहस्थ हो; तुम्हीं लोगों को रुपयों का प्रयोजन है।"

इस पर भक्त ने कातर भाव से उनसे अत्यन्त अनुनय-विनय किया। अन्त में लाचार होकर उन्होंने सेवक से कहा, "अच्छा, ठाकुर की सेवा के लिए उन रुपयों को दे दो।"

फिर चिट्ठियाँ पढ़ी जाने लगीं। एक भक्त ने दीक्षा लेने से पहले अनेक गर्हित कार्य किए थे। इस कारण उन्होंने अत्यन्त अनुतप्त होकर जीवन की अनेक घटनाओं को पत्र द्वारा सूचित करते हुए क्षमा-याचना की है। चिट्ठी सुनकर महापुरुषजी कुछ देर तक गम्भीर भाव से बैठे रहे। बाद में बोले, "इसके हृदय में ठीक-ठीक अनुताप हुआ है। पश्चात्ताप हो रहा है! इसका अवश्य होगा। लिख दो—'भय नहीं, ठाकुर तुम्हारा उद्धार करेंगे। उनके पास कोई भी पाप बहुत बड़ा नहीं है। तुम

लोगों की रक्षा करने के लिए ही तो ठाकुर आए थे। वे अन्तर्यामी हैं; तुम्हारा भूत, भविष्य, वर्तमान सब जानकर ही उन्होंने तुम पर कृपा की है। तन-मन-वचन से उनके शरणागत होकर पड़े रहो। आज से उन्होंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया है। अब तुम्हारे पैरों को कुमार्ग में नहीं जाने देंगे। कोई भय नहीं है, बच्चा। उन्हें व्याकुल होकर पुकारते जाओ। वे तुम्हारा उद्धार करेंगे। और यह जो तुमने मेरे समीप अपनी दुष्कृतियों को प्रकट किया है, इसी से, जान लेना, तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो गए; आज से तुम निष्पाप हो गए, प्रभु के भक्त हो गए, उनके आश्रित और शरणागत हो गए। उनसे केवल पवित्रता, भक्ति और प्रेम माँगना।'"

बाद में भक्ति और भक्त के प्रसंग में महापुरुषजी ने कहा, "ठाकुर कहते थे—'वह तो अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। शुद्धा भक्ति जीव-कोटि को अधिकतर नहीं होती।' ठाकुर बहुत तन्मय होकर गाया करते थे—

'आमि मुक्ति दिते कातर नइ,
शुद्धा भक्ति दिते कातर हइ।
आमार भक्ति जे वा पाय,
से जे सेवा पाय—हये त्रिलोकजयी॥
सुनो चन्द्रावली भक्तिर कथा कइ...
शुद्धा भक्ति एक आछे वृन्दावने,
गोपगोपी विने अन्ये नाहि जाने।
भक्तिर कारणे नन्देर भवने,
पिताज्ञाने तार वोझा माथाय बइ॥'*

* मैं मुक्ति देते नहीं हिचकिचाता, पर शुद्धा भक्ति देते हिचकिचाता

अहा ! ठाकुर कितनी तन्मयता के साथ इस गीत को गाते थे!" यह कहकर वे स्वयं वह गाना गाने लगे। बाद में कुछ देर तक चुप रहकर मानो अपने आप से ही कहने लगे, "ठाकुर तो पापी-तापी लोगों के उद्धार के लिए ही आए थे। आन्तरिक भाव से उनकी शरण में आने पर वे अपना वरदहस्त फिराकर सब पाप पोंछ देते हैं। उनके दिव्य स्पर्श से मनुष्य तत्काल ही निष्पाप हो जाता है। उनके ऊपर आन्तरिक आकर्षण चाहिए, उनके श्रीचरणों में आत्मनिवेदन चाहिए। गिरीश बाबू ने तो कितना सब किया था; किन्तु उनकी भक्ति देखकर ठाकुर ने उन पर कृपा की, उन्हें गोद में उठा लिया। इसी लिए तो जीवन के अन्तिम भाग में गिरीश बाबू कहा करते थे—'यदि जानता कि पाप रखने के लिए इतना बड़ा गड्ढा है, तो और भी बहुत सा पाप कर लेता!' वे कृपामय हैं — कृपासिन्धु हैं।"

एक दीक्षित स्त्री भक्त के पति अभी कुछ दिन हुए नहीं रहे। उस दग्धहृदया ने शोकातुर हो पागल के समान अनेक विलाप करते हुए पत्र लिखा है। स्तब्ध होकर उस पत्र को सुनते-सुनते महापुरुषजी बीच-बीच में कहने लगे—"ओह! अब नहीं सुन पा रहा हूँ।" पत्र पढ़े जाने के बाद कुछ देर तक आँखें मूँदे हुए बैठे रहे और फिर कहा, "महामाया लीला कर रही हैं और मनुष्य शोक-ताप से कष्ट पा रहा है। यह सब

हूँ। मेरी भक्ति जिसे मिलती है, वह त्रिलोकजयी होकर सेवा का अधिकारी होता है। सुनो चन्द्रावली, मैं तुमसे भक्ति की बात कहता हूँ...। शुद्धा भक्ति है एकमात्र वृन्दावन में — गोप-गोपियों को छोड़ अन्य कोई उसे नहीं जानता। भक्ति के कारण ही मैं नन्द के भवन में, उन्हें पिता जानकर उनका बोझा सिर पर ले चलता हूँ।

ौन समझेगा ? मनुष्य यदि थोड़ा यह सब सोचे, संसार की
ानित्यता का चिन्तन करे, तभी बच सकता है। वह तो दिन-
ात माया में डूबा रहता है। बीच-बीच में मृत्यु का चिन्तन
रना अच्छा है। कितने प्रकार से इस जगत् का नश्वरत्व
ाँखों के सामने खेलता रहता है, इसकी कोई गिनती नहीं।
कर भी जीव को चैतन्य नहीं होता ! इसी का नाम है माया।
ाकुर प्रायः इस गीत को भक्तों के सामने गाया करते थे।"
ह कहकर खूब कम्पित कण्ठ से, मानो शोक से मुह्यमान हो,
गाने लगे —

'एमनि महामायार माया, रेखेछे कि कुहक करे।
ब्रह्मा विष्णु अचैतन्य, जीवे कि ता जानते पारे॥
बिल करे घुणि पाते, मीन प्रवेश करे ताते।
गतायातेर पथ आछे, तबु मीन पालाते नारे॥
गुटिपोकाय गुटि करे, पालालेओ पालाते पारे।
महामायाय बद्ध गुटि, आपनार जाले आपनि मरे॥' *

"मनुष्य ठीक रेशम के कीड़े के समान है। स्वयं ही
ाया का संसार रचकर, उसमें बद्ध हो, शोक-ताप से जलकर मर
हा है। जिन्हें 'मेरा मेरा' कह रहा है, उनमें से कोई भी

---

* महामाया की कैसी विचित्र माया है ! कैसे भ्रम में उन्होंने डाल
ा है ! उनकी माया में जब ब्रह्मा और विष्णु भी अचेत हो रहे हैं, तो
व बेचारा भला क्या जान सकता है ? मछली जाल में पकड़ जाती है,
न्तु आने-जाने की राह रहने पर भी वह उसमें से भाग नहीं सकती।
म के कीड़े रेशम की गोटियाँ बनाते हैं; वे चाहे तो उसे काटकर
में से निकल सकते हैं, परन्तु महामाया के प्रभाव से वे इस तरह बद्ध
के अपनी बनाई हुई गोटियों में ही अपनी जान दे देते हैं।

अपना नहीं है, सो समझता ही नहीं। एक तो देह-धारण करना ही कितना कष्टप्रद है; फिर उसके ऊपर इस माया की सृष्टि! बेचारा मनुष्य भी भला क्या करे? महामाया की आवरण-शक्ति से मुग्ध होकर भोगते-भोगते मर रहा है। महामाया का व्यापार किसी भी तरह जाना नहीं जा सकता। यह सब उनकी ध्वंस-शक्ति का खेल है! इसी लिए ठाकुर कहते थे—'माँ, तुम्हारी लीला भला कौन समझ सकता है? मैं समझना भी नहीं चाहता। कृपा करके अपने श्रीचरणों में शुद्धा भक्ति और शुद्ध ज्ञान दो — यही मेरी प्रार्थना है।' ठाकुर बहुधा यह कहा करते थे। मैं तो उन्हीं की वाणी कह रहा हूँ। एक बार जब गिर पड़ने से ठाकुर का हाथ टूट गया था, उस समय उनकी अवस्था बालक-जैसी थी। वे एक दिन एक छोटे बच्चे की तरह धीरे-धीरे टहल रहे थे और माँ से कह रहे थे—'माँ, तुम्हें तो देह-धारण करना पड़ा नहीं, देह-धारण का कष्ट तो तुमने जाना नहीं!'"

महापुरुषजी कुछ देर तक चुप रहकर, "ओह! ओह! ताजा पति-शोक!"—यह कहते-कहते जोरों से रोने लगे। बाद में नेत्र निमीलित कर ध्यानस्थ हो बैठे रहे।

## बेलुड़ मठ

### शुक्रवार, १८ मार्च, १९३२

अपराह्न काल में एक सेवक चिट्ठियाँ पढ़कर सुना रहे हैं। भुवनेश्वर से आए हुए एक पत्र में श्रीमहाराज के कृपा-प्राप्त हरि महान्ति के निधन का समाचार आया है। अद्भुत,

मृत्यु ! मृत्यु से कुछ देर पहले महान्ति ने देखा कि स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज एक सुन्दर फूल हाथ में लेकर उसे देने के लिए आए हैं। महाराज को देखते ही महान्ति आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा और उन्हें प्रणाम करने के लिए उठने की चेष्टा करने लगा। परन्तु शारीरिक असमर्थता के कारण वह उठ नहीं सका। तब पास के एक व्यक्ति से महान्ति ने कहा —"महाराजजी के हाथ से फूल लेकर मुझे दे दो।" किन्तु महाराजजी को अन्य कोई नहीं देख पा रहा था। तब महान्ति ने कहा — "यह क्या ? अरे, ये जो महाराज खड़े हैं — हाथ में फूल लेकर। तुम लोग उन्हें नही देख पा रहे हो ?" इत्यादि अनेक बातें उसने कहीं, और अन्तिम घड़ी तक हाथ जोड़कर महाराज के दर्शन करते-करते प्राण त्याग दिए। यह सुनकर महापुरुषजी अश्रुपूर्ण लोचनों से बोले, "अहा ! अहा ! हरि महान्ति महाराज के प्रति बहुत भक्ति रखता था; वह उन्हे कितना चाहता था ! बड़ा सुन्दर आदमी था; बड़ा भक्तिमान ! महाराज उस पर बड़ी कृपा रखते थे; इसी लिए तो अन्त समय में दर्शन देकर उसको मुक्त कर दिया, अपने साथ लेते गए। महाराज की कृपा और ठाकुर की कृपा एक ही हैं। ठाकुर ने जिन लोगों पर कृपा की थी, उनकी तो बात ही नही, पर ठाकुर की सन्तानों ने भी जिन लोगों पर कृपा की है, उनकी भी मुक्ति निश्चित है ! और कुछ भले न हो, अन्त समय में ठाकुर के दर्शन तो मिलेंगे ही। ठाकुर अवश्य उन लोगों को हाथ पकड़कर ले जायेंगे। स्वामीजी, महाराज, ये सब क्या कोई कम हैं ?

"जिसने तन-मन-वचन से ठाकुर का आश्रय लिया है, उसको अच्छी ... हृदय में बसा लिया है, उसकी मुक्ति

अनिवार्य है, निश्चित है। दक्षिणेश्वर के उस रसिक मेहतर की बात नहीं सुनी? वह ठाकुर को 'बाबा बाबा' कहता था। एक दिन ठाकुर भावावस्था में पंचवटी की ओर से आ रहे थे। उस समय रसिक मेहतर ठाकुर के सामने घुटने टेककर बैठ गया और हाथ जोड़कर ठाकुर से कृपा की भिक्षा माँगते हुए बोला—'बाबा, मुझ पर कृपा नहीं की? मेरी क्या गति होगी?' तब ठाकुर ने उससे कहा—'भय नहीं, तेरा होगा; मृत्यु के समय मुझे देख पाएगा।' और ठीक वैसा ही हुआ। मरने से पहले जब उसे लोग तुलसी-चौरे के पास ले गए, तब वह बोल उठा—'ये बाबा आए—बाबा आए!' यह कहते-कहते वह मर गया।

"ठाकुर के सभी भक्तों का देह-त्याग बड़े अद्भुत रूप से हुआ है। बलराम बाबू * के देह-त्याग की घटना भी अत्यन्त आश्चर्यजनक है। उन्हें तो बहुत सख्त बीमारी थी; सभी लोग बड़े चिन्तित थे। देह-त्याग के दो-तीन दिन पहले से ही वे किसी भी आत्मीय-स्वजन को अपने पास नहीं आने देते थे। केवल महाराज, बाबूराम महाराज आदि हम लोगों को ही वे देखना चाहते थे। हम लोग ही उनके समीप रहा करते थे। वे जो भी थोड़ी बातें करते, सो भी केवल ठाकुर के सम्बन्ध में। देह-त्याग से एक दिन पहले ही डाक्टर आकर जवाब दे गया। बलराम बाबू की स्त्री शोक से अत्यन्त विह्वल हो गुलाब माँ, योगीन माँ ‡ आदि के साथ अन्दर महल में बैठी हुई थी। इसी समय बलराम बाबू की स्त्री ने देखा कि आकाश में काले मेघ का एक टुकड़ा तैरता आ रहा है। बाद में वह मेघ घनीभूत

---

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग गृही भक्त।

‡ भगवान श्रीरामकृष्ण देव की अन्तरंग स्त्री भक्तगण।

होकर क्रमशः नीचे उतरने लगा, और जैसे-जैसे वह नीचे आने लगा, वैसे-वैसे स्पष्टतर होने लगा। और उन्होंने उसमें देखा—एक दिव्य रथ। धीरे-धीरे वह रथ बलराम बाबू के मकान की छत पर उतरा और ठाकुर उस रथ से उतरे; उतरकर जिस कमरे में बलराम बाबू थे, वहाँ आए। थोड़ी देर के बाद ही वे बलराम बाबू का हाथ पकड़े हुए रथ मे आकर बैठ गए। फिर वह रथ ऊपर उठकर शून्य में विलीन हो गया। इधर बलराम बाबू के प्राण भी प्रयाण कर गए। ऐसी अलौकिक घटनाएँ होती ही रहती हैं! आजकल भी, अनेक भक्तों की अद्भुत मृत्यु का समाचार आता रहता है। मृत्यु के समय कितने दिव्य दर्शन, कितनी दिव्य अनुभूति हुआ करती है, ठाकुर का नाम लेते-लेते देह त्यागकर वे ठाकुर के समीप चले जाते हैं। ठाकुर के सभी भक्तों की उच्च गति होगी, यह निश्चित है। ***"

इसके दो दिन बाद अर्थात् २० मार्च, रविवार की रात्रि को रामकृष्णपुर-निवासी श्रीश्रीठाकुर के परम भक्त नवगोपाल घोष की स्त्री * ठाकुर के चित्र को हृदय पर रखकर उनका नाम लेती-लेती ध्यानस्थ हो इस संसार से चली गईं। यह समाचार सुनकर महापुरुषजी काफी देर तक अत्यन्त गम्भीर भाव से बैठे रहे। बाद में कहा, "ये सब लोग असाधारण व्यक्ति हैं, ठाकुर के लीला-सहचर हैं, युग-युग में अवतार की लीला को पुष्ट करने के लिए अवतार के साथ-साथ देह धारण करते हैं। श्रीश्रीमाँ जब वृन्दावन गई थीं, तब वे एक दिन राधाकान्त के

* ये भक्तमण्डली में 'नीरोद महाराज (स्वामी अम्बिकानन्द) की माँ' के नाम से परिचित थीं। इन्होंने ठाकुर के दर्शन किए थे तथा इन्हें ठाकुर की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ था।

चिरकाल नहीं रहता। मैं जानता हूँ कि यह शरी
यह शरीर माँ का है। वे जो चाहें, वही ह
हो, रखेंगी—न रखना हो, तो शरीर नहीं रहेगा
देह का रहना भी मेरी इच्छा पर नहीं और न
इच्छा पर नहीं। सब, बच्चा, माँ की इच्छा प
जैसी इच्छा होगी, वही होगा। तुम लोग जो क
जाओ, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यह
हूँ कि जो होना है, वह माँ की इच्छा से ही हो
कुछ नहीं कर सकते। शरत् महाराज (स्वामी स
देह-त्याग के साथ-ही-साथ यह शरीर भी चला गय
मेरे समस्त मन-प्राण ठाकुर के पादपद्मों में बिलकुल
हैं। यह शरीर जो अब तक बना हुआ है, वह वे
हैं। उतना भी कैसे है और क्यों है, यह तो ठाकुर

दो-चार बातों के बाद अजित बाबू ने कहा
मेरा एक अनुरोध है। हम लोगों की बहुत इ
बार डाक्टर नीलरतन बाबू को ले आएँ। उनके
भी हो चुकी है। फीस इत्यादि की बात कहने प
दुःखित-से होकर कहा, 'मिशन के प्रेसीडेन्ट के
लूँगा? छि, छि! बल्कि उनकी सेवा कर सकने
धन्य मानूँगा।'"

महाराज—"वे बड़े आदमी हैं, इसी लि
है। सो ले आना, मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं
, उनको व्यर्थ कष्ट देकर क्या होगा? वे इतने

डाक्टर नीलरतन सरकार के लाने के सम्बन्ध में महापुरुषजी की सम्मति पाकर अजित बाबू बड़े आनन्दित हुए। वे अब डाक्टरी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातचीत कर रहे हैं। महापुरुषजी भी बड़े ध्यान से सब सुन रहे हैं। बातचीत के प्रसंग में अजित बाबू से महापुरुषजी ने कहा, "एक secret (रहस्य) बताता हूँ। जो लोग समाधिस्थ होते हैं, उनके सिर-दर्द कभी नहीं होता। यहाँ तक कि सिर में चक्कर आदि भी नहीं आते।" अजित बाबू बात करते-करते बोले, "हार्ट (हृत्पिण्ड) की क्रिया कभी बन्द नहीं होती। हाँ, फेफड़े की क्रिया कुछ देर बन्द रखी जा सकती है, किन्तु हार्ट को कभी विश्राम नहीं मिलता।" इस पर महापुरुषजी बोले, "हार्ट भी विश्राम पाता है। उसका भी प्रबन्ध है। समाधि होने पर हार्ट को बड़ा विश्राम मिलता है।"

## बेलुड़ मठ

### रविवार, २४ अप्रैल, १९३२

आज सारा दिन भक्तों का आना-जाना लगा है। महापुरुष हाराज को थोड़ा सा भी विश्राम नहीं मिल रहा है। तो भी वे यक रूप से सबके साथ आनन्दपूर्वक भगवत्प्रसंग आदि कर रहे है। सभी लोग दर्शन पाकर परिपूर्ण हृदय से लौटते जा रहे हैं।

अपराह्न काल में लगभग तीन बजे एक संन्यासी कलकत्ते एक विशिष्ट भक्त को लेकर आए। श्रीश्रीठाकुर के शत-र्षिकोत्सव के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। संन्यासी ने तवार्षिकोत्सव की योजना के सम्बन्ध में साधारण रूप से कहा, यह उत्सव अनेक दिन तक होता रहेगा — अनेक प्रकार से,

सम्पूर्ण भारत में, सैकड़ों स्थानों में । भारतेतर देश — यूरोप, अमेरिका आदि स्थानों में भी इस उत्सव का आयोजन किया जायगा । देश-विदेश में श्रीश्रीठाकुर के भाव का प्रचार करना ही इस उत्सव का प्रधान अंग है । साथ-साथ भारत की संस्कृति, कला-विद्या इत्यादि के प्रदर्शन की व्यवस्था करने का भी विचार है । देश-देशान्तर से सभी धर्मों के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित कर सर्वधर्म-सम्मेलन करने की भी बात चल रही है। और भारत के विख्यात पण्डितों के विभिन्न विषयों पर लेख एकत्रित कर एक शतवार्षिकी-स्मृति-ग्रन्थ भी छापने की इच्छा है। इस समय तो मोटे तौर पर इस प्रकार कार्य प्रारम्भ कर दिया जायगा । फिर जैसे-जैसे कार्य आगे बढ़ेगा और जनसाधारण का सहयोग प्राप्त होगा, वैसे-वैसे आप सब लोगों के साथ परामर्श करके कार्य का प्रसार किया जायगा ।"

महापुरुषजी शतवार्षिकोत्सव की योजना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा, "यह तो अत्यन्त शुभ संकल्प है; बड़ा सुन्दर होगा । अनेक देशों में युगावतार के भाव का प्रसार होगा; इससे बहुत लोगों का कल्याण होगा । अब ठाकुर का स्मरण कर पूर्ण उद्यम के साथ काम में लग जाओ ।"

संन्यासी —"पर महाराज, बहुत द्रव्य की आवश्यकता होगी । सबसे बड़ी चिन्ता तो यह है कि इतने रुपए आएँगे कहाँ से ।"

महापुरुषजी —"सो रुपए-पैसे आ जायँगे। उसके लिए तुम लोग चिन्ता मत करो। यह तो स्वयं श्रीभगवान का कार्य है। उनके कार्य में क्या किसी चीज का अभाव रहता है ? उन पर पूर्ण विश्वास रखो — अटूट विश्वास । अपना कार्य वे स्वयं ही

करेंगे; हम लोग तो निमित्त मात्र हैं। देखोगे, अप्रत्याशित रूप से सब जुट जायगा।"

इसके बाद संन्यासी अत्यन्त कातर भाव से बोले, "महाराज, आप आशीर्वाद दें, जिससे यह विराट् योजना कार्य-रूप में परिणत हो सके।"

महापुरुषजी कुछ उत्तेजित हो दृढ़ स्वर से बोले, "आशीर्वाद क्या जी? यह तो मेरे बाबा का कार्य है—फिर आशीर्वाद क्या? हम लोग तो उनके नौकर हैं, उनके दास हैं। मैं कहता हूँ—अवश्य ही अच्छा होगा, सब सफल होगा—अवश्य होगा।" इतना कहकर वे बहुत गम्भीर हो गए। उनका मन मानो किसी अन्य राज्य में चला गया। उपस्थित सभी लोग उनकी यह दृढ़ आश्वासन-वाणी सुनकर चकित रह गए। अनेक क्षण इसी स्तब्धता में बीत गए। संन्यासी, भक्त के साथ प्रणाम करके चलने को उद्यत हुए। तब महापुरुषजी ने धीर भाव से कहा, "ठाकुर का शतवार्षिकी-फण्ड खोलने के लिए मेरी ओर से कुछ लेते जाओ।" यह कहकर एक सेवक से दस रुपए देने के लिए कहा। अपने हाथ से रुपए देकर उन्होंने कहा, "जाओ, कोई चिन्ता मत करना। उनकी कृपा से रुपए-पैसों का तनिक भी अभाव नहीं रहेगा। सब शुभ होगा।"

सभी के चले जाने पर महापुरुषजी अपने भाव में मग्न होकर चुपचाप बैठे रहे। सन्ध्या से कुछ पहले सेवक की ओर देखकर मानो अपने ही आप से कहने लगे, "ठाकुर की शतवार्षिकी एक बहुत बड़ी घटना होगी। इन लोगों ने जो सोचा है, उससे बहुत अधिक होगा। बहुत सोचकर देखा—समग्र देश ठाकुर के भाव से मत्त हो जायगा। यह शरीर तो उतने

दिन रहेगा नहीं। पर तुम लोग देखोगे कैसी विराट् घटना होती है। उनकी इच्छा से ही यह सब हो रहा है।"

रात में लगभग साढ़े आठ बजे मठ के एक वृद्ध संन्यासी महापुरुषजी के कमरे में आए और उन्हें प्रणाम कर कहा, "आज, लोगों की बड़ी भीड़ रही। मैंने तो दिन में दो-तीन बार आने की चेष्टा की; किन्तु भीड़ देखकर फिर आया नहीं। बहुत अधिक कष्ट हुआ है आपको। स्वास्थ्य कैसा है ?"

महापुरुषजी—"शरीर की बात पूछ रहे हो ? अनेक समय तो मुझे यह बोध ही नहीं रहता कि मेरे शरीर है भी—सत्य कहता हूँ। फिर भी, तुम लोग आकर पूछते हो, तो कुछ तो कहना ही पड़ता है। फिर इतनी चिन्ता भी कौन करे ? तुम लोग आते हो, भक्त लोग आते हैं, ठाकुर की बात कहता हूँ, और शेष समय उनकी दया की बातें सोचा करता हूँ—बस, उसी में आनन्द है। मैं तो उनके पास जाने की तैयारी किए बैठा हूँ; किन्तु वे अभी भी क्यों नहीं बुला रहे हैं, सो वे ही जानें। कभी-कभी सोचता हूँ कि उनकी यह कैसी अद्भुत लीला है ! इतने बड़े स्वामीजी—और उन्हें कितनी अल्प आयु में ले गए ! यदि वे रहते, तो उनका कितना काम होता ! ऐसे महाराज थे—उनको भी ले गए। और मुझे अब भी रख छोड़ा है अपने काम के लिए। मैं तो उन लोगों की तुलना में कुछ भी नहीं हूँ। वे ही जानें, उनकी क्या इच्छा है। मुझे अकेला ही छोड़ रखा है; और मुझे कितना झंझट उठाना पड़ रहा है। ठाकुर की सन्तान एक-एक करके चली जा रही है, और मुझे होता है मानो मेरे वक्षस्थल की एक-एक पसली टूटती

जा रही है। फिर भी सब सहना पड़ रहा है। अपनी विपदा किससे कहूँ?"

संन्यासी—"महाराज, आप जितने दिन हैं, उससे हम लोगों का ही कल्याण है। सैंकड़ों भक्त आते हैं शान्ति पाने के लिए; और हम लोग भी, आप है इससे कितने निश्चिन्त हैं। ठाकुर की संघ-शक्ति अभी आपको केन्द्रित करके काम कर रही है। ठाकुर की सन्तानों में से अधिकांश तो चली ही गईं; हम लोगों की देख-भाल के लिए ठाकुर ने आपको रख छोड़ा है।"

## बेलुड़ मठ

### बुधवार, २७ अप्रैल, १९३२

महापुरुष महाराज अमेरिका से प्रकाशित 'एशिया' नामक पत्रिका पढ़ रहे हैं। रूस में कानून द्वारा बेकारी बन्द कर दी गई है यह खबर पढ़कर उन्हें बहुत आनन्द हुआ और कहने लगे, "वाह! बहुत अच्छा हुआ। यह सब सुनने से ही कितना आनन्द होता है। अहह, भारतवर्ष में श्रमिकों की कैसी दुर्दशा है! पराधीन देश में गरीबों की कौन चिन्ता करे? उन लोगों के सुदिन क्या कभी नहीं आएँगे? ठाकुर, इन लोगों की कोई व्यवस्था करो! तुम तो दीनों के लिए ही आए थे।" यह कहते-कहते भाव-विभोर हो कुछ क्षण चुपचाप बैठे रहे। बाद में बोले, "सो होगा। शीघ्र ही इसका कोई उपाय होगा। स्वामीजी ने कहा था कि इस बार शूद्र-शक्ति का जागरण होगा। उसके लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी के श्रमिकों के भीतर नव-जागरण की लहर उठी है; भारतवर्ष भी इससे

अछूता नहीं रहेगा। कोई भी बाहरी शक्ति इस अभ्युत्थान को नहीं रोक सकती, क्योंकि इसके पीछे ईश्वरीय शक्ति है—युगावतार की साधना है। ठाकुर की शक्ति कितने प्रकार से कितने स्थानों में लीला करेगी, यह एकमात्र स्वामीजी ही जानते थे; और कोई भी यह नहीं जान सका। ठाकुर ने अपने देह-त्याग से पूर्व अपनी समस्त आध्यात्मिक शक्ति स्वामीजी के भीतर संक्रामित कर उनसे कहा था, 'आज तुझे सब कुछ देकर मैं फकीर हो गया।' युगधर्म के प्रचार का सब भार भी वे स्वामीजी पर ही छोड़ गए। और स्वामीजी भी उस शक्ति से शक्तिमान हो, जगत् के हित के लिए कार्य कर गए हैं। जिस भाव-धारा को वे जगत् में रख गए हैं, वह कालक्रम से विभिन्न देशों में, विभिन्न प्रकार से, विभिन्न आधार के भीतर होकर फलान्वित होगी और समग्र जगत् में सर्वांगसुन्दर उन्नति-साधन अवश्य करेगी।"

एक दीक्षित बालक भक्त ने आकर प्रणाम किया। उन्होंने स्नेहपूर्वक उससे सामने बैठने के लिए कहा और कुशल-प्रश्न के बाद उससे पूछा, "नियमित जप करता है न? खूब करना। जप करना भूलना नहीं—समझा? ठाकुर हैं युगावतार; उनका नाम जपते-जपते हृदय में कितना आनन्द पाएगा। हृदय से प्रार्थना करना—'प्रभु, मैं बालक हूँ; कुछ भी नहीं जानता। तुम दया करो—भक्ति-विश्वास से मेरे हृदय को परिपूर्ण कर दो। और तुम्हारा स्वरूप क्या है, सो मुझे समझा दो।' ऐसा होने से ही सब होगा। व्याकुल होकर खूब पुकारना। गुरु तेरी ओर स्नेहपूर्वक दृष्टिपात कर रहे हैं और तू उनकी ओर प्रेमपूर्ण नयनों से देख रहा है, इस प्रकार चिन्तन करते हुए ध्यान

करना। एक दिन में सब ठीक नहीं हो जाता। सरल हृदय से करते जा; धीरे-धीरे हो जायगा।" बाद में उन्होंने बालक को सामने बिठाकर ठाकुर का प्रसाद खिलाया। जब वह हाथ-मुँह धोने के लिए छत पर गया, तब महापुरुषजी ने कहा, "बालक के लक्षण अच्छे हैं। इसका होगा। हम लोग व्यक्तियों को देखते ही परख लेते हैं। ठाकुर हम लोगों को यह सब बहुत सिखला गए हैं। केवल ऊपर से देखने में अच्छा होने से ही नहीं होता; भक्त के लक्षण भिन्न होते हैं।"

एक भक्त ने प्रणाम करके प्रार्थना करते हुए कहा, "जप-ध्यान करता तो जा रहा हूँ; किन्तु वैसा आनन्द नहीं पा रहा हूँ। और मन को भी स्थिर नहीं कर सक रहा हूँ। दया करके आशीर्वाद दीजिए; और जिससे आनन्द मिले, वही उपाय बतलाइए।"

महापुरुषजी सस्नेह बोले, "बच्चा, जप-ध्यान में आनन्द पाना क्या इतना सरल है? अनेक साधना करने पर वह होता है। बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा। मन शुद्ध होना चाहिए। भगवान के प्रति आत्मीयता का भाव जितना अधिक होगा और उनको जितना अधिक चाहोगे, उतना ही अधिक उनके नाम में आनन्द पाओगे। नाम-नामी अभेद हैं। वे हैं प्रेममय, आनन्दमय; उनका चिन्तन जितना करोगे, उतना ही आनन्द पाओगे। मन जब तक स्थिर नहीं होगा, तब तक कुछ भी नहीं होने का। जप-ध्यान और प्रार्थना खूब किए जाओ। देखोगे, धीरे-धीरे शरीर और मन में एक नूतन बल प्राप्त होगा; और क्रमशः उनके नाम में रुचि बढ़ेगी। मन तो साधारणतः अनेक विषयों में बिखरा रहता है। उस बिखरे मन को बटोरकर ध्येय वस्तु

में लगाना होगा। खूब प्रार्थना करो। प्रार्थना बड़ी सहायक चीज है। जब देखोगे कि जप-ध्यान नहीं कर सक रहे हो, उसी समय बहुत व्याकुल होकर प्रार्थना करना। और बीच-बीच में यहाँ आना, साधु-संग करना; उससे मन में खूब बल आएगा। साधुओं के पास आकर भक्ति-भाव से भगवत्प्रसंग करना। अन्यथा व्यर्थ की बातें करने से तुम्हारा भी कुछ लाभ नहीं होगा, और साधु का भी समय नष्ट होगा। असली बात है — जप-ध्यान, प्रार्थना, स्मरण-मनन, सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन, भगवत्प्रसंग, यह सब करते हुए अनेक प्रकार से भगवान को लेकर रहना होगा। अच्छा, एक काम करो तो सही; जाओ, इसी क्षण पूजा-घर में जाकर ठाकुर की ओर देखते हुए बहुत प्रार्थना करो। कहो — 'ठाकुर, तुम मेरी रक्षा करो; मैं निराश्रय हूँ, अज्ञानी हूँ। प्रभु, तुम दया करो, कृपा करो, मुझे बल दो। तुम्हारी ही एक सन्तान ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।' इस प्रकार बहुत व्याकुल होकर प्रार्थना करो। वे कृपा करेंगे, तुम्हारे हृदय में आनन्द देंगे।"

दोपहर के बाद चिट्ठियाँ पढ़ी जा रही हैं। एक भक्त की चिट्ठी सुनकर महापुरुषजी ने कहा, "यही ठीक है। यह व्याकुलता ठीक-ठीक हो जाय, तो फिर चिन्ता क्या? लिख दो— 'खूब रोओ, बहुत पुकारो, बड़ी ज्वाला-यन्त्रणा का अनुभव करो, विरहाग्नि में जलो-भुनो — तभी तो होगा।' ठाकुर कहते थे कि मनुष्य स्त्री-पुत्र के लिए आँसुओं की झड़ी लगा देता है; किन्तु भगवान के लिए कितने लोग रोते हैं? भगवत्प्राप्ति नहीं हुई, इस कारण जो रोना है, वह तो महाभाग्यशाली है। उस पर अवश्य भगवान की कृपा हुई है। शान्ति-लाभ करना क्या सरल

बात है? तत्त्वज्ञान का लाभ हुए बिना शान्ति कहाँ? उनमें जब मन समाधिस्थ हो जाता है, तभी वास्तविक शान्ति मिलती है; उसके पहले नहीं। यह एकाएक होनेवाली बात तो है नहीं; लगे रहना होगा — खानदानी किसान के समान।"

एक भक्त ने प्रार्थना की है, "महाराज, इसी जन्म में ठाकुर के श्रीपादपद्मों में शुद्धा भक्ति का लाभ हो।" उसके उत्तर में उन्होंने लिख देने को कहा, "बच्चा, उनके श्रीपादपद्मों में भक्ति-विश्वास लाभ करने की तुम्हारी आन्तरिक इच्छा हुई है, यह जानकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। उनके समीप व्याकुल होकर प्रार्थना करो। वे अन्तर्यामी हैं। वे जानते हैं, अपने भक्त को कब क्या देना होगा। उनके श्रीपादपद्मों में शरणागत होकर पड़े रहो। वास्तविक भक्त तो यह जन्म, वह जन्म नहीं सोचता। यह तो अत्यन्त ओछी बात है। जिससे पूर्ण विश्वास, भक्ति और प्रेम हो, वही ठाकुर के पास प्रार्थना करना। इस जन्म, उस जन्म की बात मन में न लाना। तुम विश्वास, भक्ति और प्रेम से भरपूर हो जाओ — यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है। सच्चे भक्त की प्रार्थना होनी चाहिए —

'एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि।
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥
दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो, नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।'

—'यही मेरी ऐकान्तिक प्रार्थना है कि स्वर्ग, मर्त्य अथवा नरक जहाँ कहीं भी मेरा वास क्यों न हो, हे नरकनिवारणकारि! जन्म-जन्मान्तर में भी तुम्हारे युगल पादपद्मों में मेरी अचला भक्ति बनी रहे।' उनके श्रीपादपद्मों में भक्ति-लाभ हो जाने से सभी स्वर्ग है — सभी आनन्दमय है। उनकी कृपा से तुम्हें वही हो।"

एक दूसरे भक्त की चिट्ठी के उत्तर में लिखने के लिए कहा — "प्रभु को जो चाहता है, वही पाता है। परन्तु चाहना ठीक-ठीक होना चाहिए। हृदय से पुकारना होगा, तभी वे दर्शन देंगे। ठाकुर कहते थे —'भगवान मानो चन्दा मामा हैं, सभी के मामा। जो चाहता है, वही पाता है।' प्रभु के विरह में, उनको न पा सकने के कारण जो रोना है, वह कोई किसी को सिखा नहीं सकता; वह तो समय होने पर अपने आप ही आ जाता है। * * * उनके लिए जब प्राणों में ठीक-ठीक अभाव का अनुभव होगा, भगवत्प्राप्ति नहीं हो रही है इस व्यथा से, जब प्राण छटपटाने लगेंगे, उनके विरह में जब जगत् शून्य दिखाई देने लगेगा, तभी छाती फाड़कर रोना आएगा। वह सौभाग्य कब आएगा, यह कोई नहीं जानता। उनकी कृपा होने से ही वह अवस्था आएगी और तुम हृदय में ही उसका अनुभव करोगे। खूब व्याकुल होकर उनको पुकारो, खूब प्रार्थना करो, कहो —'प्रभु, कृपा करो, कृपा करो।' वे तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे — मैं कहता हूँ। वे भक्तों की इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं। आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ — प्रभु तुम्हारी कामना पूरी करें।"

## बेलुड़ मठ

### बृहस्पतिवार, २८ अप्रैल, १९३२

एक संन्यासी उत्तरकाशी में तपस्या करने के लिए गए हैं। वहाँ जाकर वे बहुत अस्वस्थ हो गए हैं। उन्होंने यह बात तथा वहाँ की अनेक असुविधाओं को सूचित करते हुए पत्र लिखा है। महापुरुषजी ने उन्हें यह उत्तर लिखने के लिए कहा —"वहाँ

पर अस्वस्थता के कारण कष्ट उठाने की अपेक्षा शीघ्र ही इस ओर प्रस्थान कर दो। उत्तरकाशी मे ही मुक्ति-लाभ सम्भव हो, ऐसी तो कोई बात नहीं ? यदि उनकी इच्छा हो, उनकी कृपा हो, तो सभी स्थानों में मुक्ति हो सकती है, समाधि लाभ की जा सकती है। इतने दिन तक वहाँ रहकर देख तो लिया। अब इसी ओर चले आओ और जैसा पहले साधन-भजन करते थे, वैसा यहाँ ही आकर करो। असल बात तो है उनके श्रीपादपद्मों में भक्ति लाभ करना। सो वह यहाँ आने पर भी हो सकता है। अनेक साधुओं को वे सब स्थान सह्य नही होते— रोग से पीड़ित हो उनकी असमय मृत्यु हो जाती है, अथवा अधिक कठोरता करने के कारण उनका सिर फिर जाता है। बच्चा, सब उनकी ही इच्छा है। उनके शरणागत होकर पड़े रहो। निरन्तर उनको पुकारो, प्रार्थना करो। क्रमशः उनकी कृपा की उपलब्धि हृदय में होगी। समाधि का लाभ हुए बिना तत्त्वज्ञान नही होता, और वह समाधि-लाभ भी उनकी कृपा बिना सम्भव नहीं। जीवन का उद्देश्य है भगवान का लाभ करना। वह किसी स्थानविशेष की अपेक्षा नहीं करता। स्वयं ठाकुर के जीवन में ही देखो न। वे तपस्या करने के लिए उत्तरकाशी तो नही गए और न हिमालय में ही घूमते फिरे। उनके जीवन को आदर्श बनाकर चलना होगा। उनके जीवन का प्रत्येक कार्य ही इस युग का आदर्श है। यही सबसे उज्ज्वल दृष्टान्त है।"

एक ब्रह्मचारी वैराग्य होने के कारण एकदम हिमालय में तपस्या करने चला गया है। इस सम्बन्ध में महापुरुषजी ने कहा, "बच्चा, इतना घूमना-फिरना अच्छा नहीं। उससे कुछ होता नहीं। बिलकुल कुछ न होता हो, सो बात नहीं; कुछ तो होता

हैं। परन्तु यह सब सामयिक है; उसका फल दीर्घ काल तक स्थायी नहीं रहता। असली बात तो यह है कि कुछ भी स्थायी लाभ करने के लिए हम लोगों को ठाकुर-स्वामीजी के मठ में बैठकर साधन-भजन करना होगा। इसी लिए तो स्वामीजी अपने हृदय का रक्त बहाकर इस मठ को बनवा गए हैं। फिर इतना साधु-संग! ऐसे साधु सब मिलेंगे कहाँ? ऐसा शुद्ध, पवित्र, वैराग्यवान, विद्वान्, मुमुक्षु साधु-संग मिलना दुर्लभ है। इसके अतिरिक्त, यहाँ पर ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग सभी हैं। साधन-भजन का ऐसा अनुकूल स्थान अन्यत्र कहीं भी नहीं है। जिनको ठीक-ठीक वैराग्य हुआ है, वे क्या स्थान ढूँढ़ते फिरते हैं? वे तो एक ही स्थान में चुपचाप रम जाते हैं। हिमालय में कहीं-कहीं पर कुछ बड़े अच्छे साधु, वैराग्यवान तपस्वी हैं। वे लोग बिलकुल सुनसान स्थान में रहते हैं। और शेष जो हैं, वे तो किसी तरह दिन काटते रहते हैं। हरि महाराज इसी लिए तो कहते थे—'हम लोग तो चोर हैं। है भला हममें इतनी शक्ति कि प्रत्येक क्षण साधन-भजन लेकर रह सकें? बहुत सा समय तो व्यर्थ चला जाता है। इसकी अपेक्षा थोड़ी-बहुत सेवा करना और साथ-साथ साधन-भजन करना अच्छा है।' घूमना-फिरना, कठोरता आदि हम लोगों ने भी तो कोई कम नहीं की? जीवन में वह सब जानकारी बहुत हुई है। हिमालय में, पहाड़ और जंगलों में जहाँ कहीं भी गया, बहुत जप-ध्यान करता था। देख चुका हूँ—प्राकृतिक दृश्य आदि का ज्ञान भी भला कितनी देर तक? अधिक देर नहीं रहता। मन जब निर्विषय होकर ध्येय वस्तु में मग्न हो जाता था, उस समय आसपास का कोई बोध ही नहीं रहता था। देश-काल का ज्ञान जब लुप्त हो जाता

है, तब रहता है केवल एक आनन्द — सच्चिदानन्दघन। भीतर में सभी जगह समान है। बाहर में भला क्या सौन्दर्य है? कुछ भी नहीं। सब सौन्दर्य की खान तो भीतर में ही है। जो व्यक्त हुआ है, वह तो ससीम है, उसकी इति की जा सकती है; किन्तु जो अव्यक्त है, वह तो असीम है। जितने अधिक अन्तरतम प्रदेश में मन प्रवेश करेगा, उतना ही वह उसमें मग्न हो जायगा। 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'* वे कितने विराट् हैं! उनमें एक बार मन लिप्त हो गया, तो बस काम फतह समझो! उस समय मन फिर किसी भी बाहरी विषय में आनन्द नहीं पाता। समस्त शान्ति के आकर तो वे ही हैं। उनके दर्शन यदि नहीं हुए, तो मानव-जीवन ही वृथा है। भगवद्दर्शन नहीं हुआ, तो कुछ भी नहीं हुआ।"

## बेलुड़ मठ

### शनिवार, २१ मई, १९३२

अपराह्न काल। एक भक्त साधन-भजन में मन को स्थिर नहीं कर सक रहे हैं। इसलिए अत्यन्त नैराश्य का भाव प्रकट करते हुए उन्होंने महापुरुष महाराज से कहा, "महाराज, चेष्टा तो करता हूँ; किन्तु मन स्थिर नहीं होता। क्या किया जाय, दया करके कुछ बताइए। मेरा क्या कुछ भी न होगा?"

महापुरुषजी दृढ़ स्वर से बोले, "बच्चा, छुट्टी तो अभी और भी डेढ़ महीना शेष है। जैसा कहा है, वैसा ही कर देखो

* ऋग्वेद — १०।९०. परम पुरुष के एक चरण से समग्र जगत् अभिव्यक्त हुआ है। अव्यक्त तीन चरण सृष्टि के ऊपर अमृतस्वरूप से विद्यमान हैं।

न। थोड़े से में ही हताश होने से कैसे चलेगा? श्रद्धा चाहिए धैर्य चाहिए। लगे पड़े रहो। थोड़े से में ही कुछ नहीं हुआ इस कारण हाहाकार मचाने से क्या होगा? मन स्थिर करने का अथवा भगवदानन्द प्राप्त करने का कोई कृत्रिम उपाय तो मैं नहीं जानता, बच्चा! मैं जो उपाय जानता हूँ, ठाकुर के समीप जो सीखा है, सो तुमसे कह चुका हूँ। और यह भी कहे देता हूँ कि इस मार्ग में चटपट कुछ होने का नहीं। नियमित भाव से निष्ठा के साथ दिन-पर-दिन, मास-पर-मास, वर्ष-पर-वर्ष समान रूप से लगे रहना होगा—साधन-भजन करना होगा। जो मन इतने समय तक विविध विषयों में बिखरा पड़ा रहा है, उसे धीरे-धीरे बटोरकर भगवान के चरणों में मग्न करना होगा। ठाकुर को पुकारो; और लगे रहो। क्रमशः मन स्थिर होगा और आनन्द पाओगे। कोई एक शक्ति मानते तो हो न? तुम लोगों के लिए भगवान का सगुण—साकार भाव ही ठीक है। उसमें सहज ही मन स्थिर कर सकोगे। मैं पहले ब्राह्मसमाज में जाया करता था। बाद में जब दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास आया, तब उन्होंने एक दिन पूछा—'तू शक्ति मानता है?' मैंने कहा, 'मुझे निराकार ही अच्छा लगता है; परन्तु यह भी मन में होता है कि एक शक्ति सर्वत्र ओतप्रोत होकर विद्यमान है।' बाद में वे काली-मन्दिर में गए। मैं भी साथ-साथ गया। वे तो मन्दिर की ओर जाते-जाते ही भावस्थ हो गए और माँ के सामने जाकर बड़े भक्ति-भाव से प्रणाम किया। यह देखकर मैं एक बड़े असमंजस में पड़ गया। काली की मूर्ति के सामने प्रणाम करने में पहले तो मन में थोड़ी हिचक-सी मालूम हुई। किन्तु साथ ही मन में हुआ कि ब्रह्म तो सर्वव्यापी हैं; तब तो वे इस मूर्ति के

भीतर भी रहते हैं; अतएव प्रणाम करने में कोई हर्ज नहीं। मन में यह आते ही मैंने भी प्रणाम किया। उसके बाद ठाकुर के पास जितना अधिक आने-जाने लगा, उतना ही धीरे-धीरे साकार में पूर्ण विश्वास हो गया। मेरा महाभाग्य है कि मैंने ठाकुर का पुण्य संग लाभ किया है, उनकी कृपा पाई है।"

## बेलुड़ मठ

### सोमवार, ३० मई, १९३२

इस प्रसंग में बातचीत चलने पर कि पाश्चात्य देशों मे विज्ञान की उन्नति के फलस्वरूप लोगों के दैनिक जीवन में नाना प्रकार के सुख-चैन और ऐशो-आराम की व्यवस्था हो गई है एवं पाश्चात्य देशवासी भारतवासियों की अपेक्षा बहुत अधिक सुखी हैं—महापुरुष महाराज ने कहा, "वह सब सुख तो क्षणिक है। उसमें रखा ही क्या है? उन लोगों ने भगवदानन्द कभी चखा नहीं, इसी लिए इस क्षणिक आनन्द में मत्त हो रहे हैं। बच्चा, कोई कुछ भी कहे, पर काम-कांचन में सुख नहीं है। वह फिर चाहे स्वर्ग में ही अथवा और कहीं क्यों न हो—वह चाहे विद्वान् हो अथवा अन्य कोई; काम-कांचन मे सुख कभी नहीं है, नहीं है, नहीं है। यह भगवान की वाणी है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी कहा है—'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति...।'*

---

* छान्दोग्य उपनिषद्—७।२३।१. जो वस्तु भूमा है, उसी में सुख है; अल्प (अनित्य वस्तु) में सुख नहीं है। भूमा ही शाश्वत सुखस्वरूप है। भूमा का ही अन्वेषण करना होगा।

"वास्तविक सुख है उस भूमा वस्तु में। उसी को जानना होगा। विज्ञान उस भूमा का सन्धान नहीं दे सका। विज्ञान की गति है जड़ वस्तुओं में, जागतिक वस्तुओं में। जागतिक भोग करते-करते भोग-स्पृहा दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है। उसमें तृप्ति कहाँ? उसमें शान्ति कहाँ? भोग के भीतर ही तो अशान्ति का बीज है।—

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥'†"

बाद में, जीवन में शान्ति-लाभ करने के प्रसंग में कहा, "अनात्म-वस्तु में शान्ति नहीं। आत्मज्ञान-लाभ में ही वास्तविक शान्ति है। और उस शान्ति का सन्धान भी भीतर में करना होगा। शान्ति भीतर में ही है, बाहर में नहीं। ज्ञान, भक्ति, भगवत्प्रेम — सब भीतर में है। साधन-भजन करो, भगवान को पुकारो। बच्चा, वे अवश्य भीतर में शान्ति देंगे।"

रात में दीक्षा के सम्बन्ध में कहा, "दीक्षा अनेक प्रकार की है। सभी को जप-मन्त्र लेना चाहिए ऐसा कोई नियम है? सबका भाव भी तो एक प्रकार का नहीं होता और सबका आधार भी भिन्न-भिन्न होता है। यह अवश्य है कि साधारण गुरु इन सब अलग-अलग वृत्तियों को समझ नहीं सकते। किसी को साकार अच्छा लगता है, किसी को निराकार। फिर साकार, निराकार के भी अनेक प्रकार है। किसी को ध्यान अच्छा लगता है — वह ध्यान करे; किसी को जप अच्छा लगता है — वह

† महाभारत—१।७५।५०. काम्य वस्तुओं के उपभोग द्वारा कामना की शान्ति कभी नहीं होती, वरन् घी डालने से जैसे अग्नि अधिक उत्तेजित हो उठती है, उसी प्रकार कामना भी भोग के द्वारा और अधिक बढ़ जाती है।

जप करे। फिर किसी को ध्यान, जप दोनों करना अच्छा लगता है। किसका कैसा भाव है, कैसा घर है, यह सब जानकर तब उसके अनुरूप साधक को उपदेश देना पड़ता है। अन्यथा यदि सबको एक ही साँचे में डाल दिया जाय, तो उससे आध्यात्मिक उन्नति में अवश्य विलम्ब होगा।"

साधु-भक्तों के घूमने-फिरने के सम्बन्ध में कहा, "देखो, भक्तों को अधिक घूमना-फिरना अच्छा नहीं। उससे भक्ति-लाभ में हानि पहुँचती है। इसलिए थोड़ा घूम-फिरकर चुपचाप एक जगह बैठकर साधन-भजन करना चाहिए। उससे भाव-भक्ति दृढ़ होती है। अधिक घूमने-फिरने से भाव शुष्क हो जाता है। पर हाँ, परिव्राजक अवस्था की बात इससे भिन्न है। उस समय एक व्रत लेकर रहना होता है।"

## बेलुड़ मठ

### शनिवार, ४ जून, १९३२

महापुरुषजी का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। रक्त-चाप बढ़ गया है। रात में नींद भी अच्छी हुई नहीं। आज सबेरे ही एक दुःखमय समाचार मिला है। श्रद्धेय मास्टर महाशय (श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त) सवेरे लगभग ६ बजकर १५ मिनट पर अपनी नश्वर देह का त्याग कर श्रीभगवान के पादपद्मों में मिल गए हैं। उनकी आयु ७८ वर्ष हो गई थी। यह संवाद सुनकर महापुरुष महाराज शोक से चुपचाप बैठे हुए हैं। किन्तु और अधिक वे इस शोक की मसोस को भीतर नहीं रख सक रहे हैं। धीरे-धीरे पास के साधु और भक्तों को लक्ष्य करके कहा, "ठाकुर ने

मुझे ऐसा बना रखा है कि क्या कहूँ, शरीर से यह भी सम्भव न हो सका कि थोड़ा जाकर मास्टर महाशय को देख आता। वे अपने सब भक्तों को एक-एक करके खींचे ले जा रहे हैं, और मुझे यह सब शोक-सन्ताप सहने के लिए छोड़ रखा है। उनकी क्या इच्छा है वे ही जानें। अहा, मास्टर महाशय ने मानो सारे कलकत्ते को आलोकित कर रखा था! कितने भक्त उनके पास जाकर ठाकुर की बातें सुनते और शान्ति पाते थे। उस अभाव को अब पूरा नहीं किया जा सकता — will never be made good. उनके पास ठाकुर की बातों के सिवाय और कोई बात न थी। उनका जीवन ठाकुरमय था! ठाकुर उनको कितना चाहते थे! दक्षिणेश्वर में वे कितने ही दिन रहे थे। उनका आहार आदि तो बहुत साधारण था — बस सामान्य दूध-भात। ठाकुर अपनी नौकरानी से कहकर दूध का प्रबन्ध करा देते थे — खालिस दूध, केवल आध सेर — बस। मास्टर महाशय का शरीर भी बड़ा बलिष्ठ था। तभी तो वे ठाकुर का इतना काम कर सके। ठाकुर के पास जो-जो बातें सुनते, घर आकर वे सब नोट कर डालते। बाद में उन्हीं सब नोट (Notes) में से ही ऐसा 'वचनामृत' लिख गए! उनकी स्मरण-शक्ति भी अद्भुत थी। इतना थोड़ा-थोड़ा लिखा तो था; पर उसी से बाद में ध्यान कर-करके सब स्मरण कर लेते थे, और इस प्रकार 'वचनामृत' लिख डाला! वे ठाकुर के आदमी थे। ठाकुर मानो यह काम कराने के लिए ही उन्हें साथ लाए थे। शनिवार, रविवार या छुट्टी के दिन प्रायः ही मास्टर महाशय ठाकुर के पास जाते थे; और कलकत्ता अथवा अन्य किसी स्थान पर यदि ठाकुर जाते, तो वहाँ भी उनसे भेंट करते थे। ऐसा होता कि बड़ी

अच्छी-अच्छी बातें हो रही हैं, कमरे भर लोग भरे हुए हैं, एका-एक ठाकुर मास्टर महाशय को लक्ष्य कर कह उठते, 'मास्टर, समझे? यह बात भली भाँति सुन रखो।' कभी-कभी ठाकुर बहुतसी बातें बार-बार कहते थे। हम तो उस समय यह नहीं जानते थे कि ठाकुर मास्टर महाशय से क्यों ऐसा कहते हैं। ठाकुर की बातें इतनी अच्छी लगती थीं कि मैंने भी थोड़ा-थोड़ा लिखना शुरू किया था। एक दिन दक्षिणेश्वर में उनके मुख की ओर एकटक देखते हुए ध्यानपूर्वक सब बातें सुन रहा था — बड़ी सुन्दर बातें हो रही थीं। उन्होंने मेरे इस भाव को लक्ष्य करके कहा, 'क्यों रे, इस तरह क्यों सुन रहा है?' मैं थोड़ा अप्रतिभ हो गया। तब ठाकुर बोले, 'तुझे वह सब कुछ नहीं करना होगा — तुम लोगों का जीवन भिन्न है।' मैंने समझ लिया कि ठाकुर ने मेरा मनोभाव जानकर ही इस तरह कहा है। तभी से मैंने कुछ लिखकर रखने का संकल्प छोड़ दिया। जो लिखा था, वह भी सब गंगाजी में फेंक दिया।"

दूसरे दिन सुबह कलकत्ते से कई भक्त मठ में आए। वे सभी बहुत दिनों से मास्टर महाशय के पास आते-जाते थे और उन सबों ने उनकी सेवा भी खूब की थी। आज वे सब दुःखग्रस्त थे। उन लोगों से मास्टर महाशय के निधन का विवरण आद्योपान्त ध्यानपूर्वक सुनकर महापुरुषजी ने उनसे स्नेहार्द्र स्वर में कहा, "ओह, तुम लोगों को बड़ा धक्का पहुँचा है! यह ताजा शोक है — किसी के भी कहने-समझाने से हटेगा नहीं। विनय कहाँ है? उसके हृदय में भी बड़ा आघात पहुँचा है। वह बहुत समय तक उनके पास था और उसने मन लगाकर उनकी खूब सेवा आदि की है। क्या किया जाय बताओ? इसमें तो किसी का

भी बस नहीं। ठाकुर स्वयं अपने लोगों को लिए जा रहे हैं। फिर भी, हम जानते हैं कि मास्टर महाशय का हमारे और ठाकुर के साथ चिरकाल का सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध जाने का नहीं। तुम लोग भूलकर भी यह न समझना कि मास्टर महाशय के निधन के साथ सब कुछ समाप्त हो गया। कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं।"

इस प्रकार अनेक वार्तालाप के बाद महापुरुषजी ने भक्तों को बहुत सान्त्वना दी और उनके विदा होने पर आशीर्वाद देते हुए कहा, "कोई भय की बात नहीं बच्चो, ठाकुर तो हैं। हम लोग भी तो अभी वर्तमान हैं। जभी समय पाओ, मठ में आना।"

जब भक्तगण चले गए, तो महापुरुषजी ने कहा, "अहा, मास्टर महाशय भक्तों के एक आश्रय थे, हृदय को शीतल करने के लिए एक स्थान थे! विशेष कर शरत् महाराज के देह-त्याग के बाद बहुत से भक्त उनके पास जाते थे। वे भी अथक रूप से ठाकुर की बातें कहकर लोगों को हार्दिक शान्ति देते थे। यह अभाव पूरा नहीं हो सकता। वे पुण्यात्मा थे, ठाकुर का कितना बड़ा काम कर गए! 'वचनामृत' का यदि एक ही खण्ड लिखकर वे देह-त्याग कर देते, तो भी अमर हो जाते। उनकी कीर्ति अखण्ड है।"

## बेलुड़ मठ
### १९३२

आजकल महापुरुष महाराज अहोरात्र एक अनिर्वचनीय दिव्य भाव में रहते हैं। कभी-कभी उस भाव की इतनी वृद्धि

होती है कि भाव के नशे में सारी रात विनिद्र अवस्था में कट जाती है। शरीर की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। उस सम्बन्ध में पूछने पर वे बालक के समान मधुर हँसी हँसते हुए कहते हैं—"अरे, जाको राखे साइँया मारि सके नहिं कोय। जब तक ठाकुर अपने काम के लिए रखेंगे, तब तक यह शरीर किसी भी तरह रहेगा ही।" यदि कोई कहता है कि बहुत दिनों तक निद्रा का न आना तो शरीर के लिए विशेष हानिकारक है, तो वे उत्तर देते हैं, "योगियों के लिए निद्रा की क्या आवश्यकता? मन के समाधिस्थ होने पर फिर निद्रा की आवश्यकता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त, ध्यान की भी एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मन के उठने पर शरीर की समस्त थकावट दूर हो जाती है। गाढ़ी नीद के बाद शरीर जैसे बड़ा ताजा मालूम पड़ता है, उससे भी अधिक ताजा इस ध्यान की अवस्था में अनुभव होता है। एक अव्यक्त आनन्द से समस्त शरीर और मन भर जाता है। मुझे जब कभी थकावट मालूम पड़ती है, तभी शरीर से मन को ऊपर उठाकर इस प्रकार ध्यानस्थ हो जाता हूँ—बस, आनन्द-ही-आनन्द! ठाकुर को देखा है—वे प्रायः नहीं सोते थे, कभी बहुत हुआ तो एक-आध घण्टा। वे तो अधिकतर समाधिस्थ होकर ही रहते थे और शेष समय भावावस्था में कट जाता था। रात में ही उनमें मानो भाव की प्रबलता होती थी। सारी रात माँ का नाम लेकर, हरिनाम लेकर काट देते थे। हम लोग दक्षिणेश्वर में जब ठाकुर के पास रात में रहते थे, तो बड़े डरे-डरे रहते थे। उन्हें बिलकुल नीद नहीं आती थी। जब कभी नीद खुल जाती, तो हम लोग सुनते, वे भावावेश में माँ के साथ बातें कर रहे

हैं, अथवा अस्पष्ट स्वर से कुछ कहते हुए कमरे भर में टहल रहे हैं। कभी दो पहर रात बीते हम लोगों को पुकारते —'क्यों रे, तुम सब यहाँ क्या सोने के लिए आए हो? सारी रात यदि सोने में बिता दोगे, तो भगवान को पुकारोगे कब?' उनके शब्द सुनते ही हम लोग हड़बड़ाकर उठ जाते और ध्यान करने के लिए बैठ जाते थे।"

कुछ दिनों तक महापुरुषजी की एक विशेष अवस्था रही थी। जो कोई उनके दर्शनार्थ एवं प्रणाम करने आता, प्रत्येक को वे हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते थे। मठ के वृद्ध अथवा नए संन्यासी, ब्रह्मचारी, भक्त स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका— सभी दर्शनाभिलाषियों को देखते ही वे पहले हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम करते और बाद में कुशल-प्रश्न पूछते। इससे सभी साधु-भक्तगण बड़े सकुचा जाते और दुःखित भी हो जाते थे। इसके अतिरिक्त, जितने भी साधु-भक्त उनके दर्शनार्थ आते, सभी को कुछ-न-कुछ खिलाए बिना उन्हें सन्तोष नहीं होता था। विशेष कर कुमारी और बालक नारायणों को तो तृप्ति होते तक फल, मिठाई आदि खिलाते ही थे।

एक दिन की बात है — रात के दो बजे का समय था। समस्त प्रकृति शान्त और निस्तब्ध थी। महापुरुषजी के कमरे में एक हरे रंग का बल्व जल रहा था। वे बिस्तर पर आराम से बैठे हुए थे। सारी रात दो सेवक पारी-पारी से महापुरुष महाराज के पास रहते थे और जिस समय जैसी आवश्यकता होती, वैसा करते थे। रात को दो बजे सेवकों की पारी बदलने का समय था। दूसरा सेवक ज्योंही बिस्तर के पास आया, त्योंही उन्होंने धीर गम्भीर स्वर में पूछा —"कौन?" सेवक ने

अपना नाम बताया। सुनते ही महापुरुषजी ने हाथ जोड़कर सेवक को प्रणाम किया। सेवक उन्हीं का दीक्षित शिष्य था। यह देखकर कि मेरे ही गुरु मुझे इस प्रकार प्रणाम कर रहे हैं, सेवक के हृदय को बड़ा धक्का लगा। वह हाथ जोड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से, रुद्ध-कण्ठ हो बोला, "महाराज, आपने मुझे क्यों प्रणाम किया? मैं तो आपका ही चरणाश्रित हूँ। इससे तो, महाराज, मेरा महा अकल्याण होगा।" सेवक की इस प्रकार व्याकुल-वाणी सुन महापुरुषजी कुछ विचलित-से हो, गम्भीर स्वर में बोले, "दुःख मत करना, बच्चा। इससे तेरा कोई अकल्याण नहीं होगा। मैं कहता हूँ; मेरी बातों पर विश्वास कर। तेरे मन में जो बड़ा कष्ट हुआ है, उसे मैं खूब अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ। परन्तु क्या करूँ? तू ही बता। मैं तो तेरे भीतर 'नारायण' देख रहा हूँ। मैं क्या तुझे प्रणाम करता हूँ? अरे, तेरे भीतर जो भगवान हैं, उन्हें प्रत्यक्ष देखकर प्रणाम करता हूँ। तुम लोग सोचते हो कि तुम लोगों को प्रणाम करता हूँ। सो नहीं। ठाकुर मुझ पर कितने प्रकार से कृपा कर रहे हैं — कितना क्या दिखा दे रहे हैं — सो और क्या कहूँ?" इतना कहकर वे चुप हो गए।

एक दूसरे अवसर पर एक सेवक ने महापुरुषजी से पूछा कि वे सबको प्रणाम क्यों करते हैं। इस पर महापुरुषजी ने कहा, "ज्योंही लोग सामने आते हैं, त्योंही साथ-ही-साथ विभिन्न देव-देवियों की मूर्तियाँ दिखाई देती हैं; इसी लिए उन-उन देवताओं को प्रणाम करता हूँ। किसी व्यक्ति के सामने आते ही पहले उसके भीतर जो सत्ता है, उसी सत्ता के अनुरूप कोई ईश्वरीय ज्योतिर्मय रूप सामने आविर्भूत हो जाता है।

मनुष्य तो छाया के समान अस्पष्ट दिखाई देता है, पर ईश्वरीय रूप स्पष्ट एवं जीवन्त दीख पड़ता है। इसी लिए तो प्रणाम करता हूँ। प्रणाम कर लेने के बाद ईश्वरीय रूप अन्तर्हित हो जाता है। तब आए हुए मनुष्य को स्पष्ट रूप से देख पाता हूँ और पहचान भी पाता हूँ।"

सेवक —"महाराज, आप तो दिव्य दृष्टि द्वारा सभी के भीतर भगवान के दर्शन कर सबको प्रणाम करते हैं, परन्तु हम लोग तो वह सब नहीं समझ पाते। हम लोगों के मन में होता है — यह कैसा विचित्र व्यवहार है! कहाँ तो लोग आपको प्रणाम करने आते हैं, और कहाँ आप ही उन सबको प्रणाम करने लगते हैं। साधु-भक्तों के मन में कभी-कभी एक प्रकार का खटका भी पैदा हो जाता है। और बहुत से लोग तो अनेक प्रकार की बातें भी सोचने लगते हैं।"

महापुरुषजी —"सो उससे क्या? मैं क्या यह सब स्वयं करता हूँ? क्यों ऐसा करता हूँ, सो मैं स्वयं भी कभी-कभी नहीं समझ पाता; अवाक् हो जाता हूँ। फिर दूसरा कोई इसके बारे में भला क्या समझेगा? इसके भीतर ठाकुर को छोड़ और कुछ भी नहीं है। वे जैसा कराते हैं, वैसा करता हूँ; जैसा कहलाते हैं, वैसा कहता हूँ। ठाकुर ने इस शरीर का आश्रय लेकर न जाने कितनी लीलाएँ की हैं — सो सब किससे कहूँ और समझेगा भी कौन? तुम तो सब अभी बालक हो। इस समय यदि महाराज, हरि महाराज या शरत् महाराज रहते, तो वे लोग इसे ठीक-ठीक समझते; और मैं भी उनके पास अपने हृदय की बातें सुनाकर शान्ति पाता। सो उनकी जैसी इच्छा वैसा ही होगा। मैं तो उनकी बलि हूँ — वे गर्दन से भी काट सकते

है और नीचे से भी काट सकते हैं। इस समय शरीर का कर्म जितना क्षीण होता जा रहा है, भीतर का कर्म उतना ही बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार यह शरीर और कितने दिन टिकेगा, सो तो वे ही जानें।"

## बेलुड़ मठ

### बुधवार, २२ जून, १९३२

आज सवेरे से ही खूब वृष्टि हो रही है। महापुरुषजी बड़े आनन्दित हैं। हाथ जोड़कर जगन्माता से कह रहे हैं, "माँ, तुम न बचाओ तो तुम्हारी सृष्टि कैसे बचे? वृष्टि के अभाव से तो सब नष्ट हुआ जा रहा था!" बाद में उनके आदेशानुसार पास की छत पर कबूतर, मैना और गौरइयों आदि के लिए चावल डाला गया। झुण्ड-के-झुण्ड पक्षी आकर दाना चुगने लगे। यह देखकर महापुरुषजी को बहुत आनन्द हुआ। वे बोले, "मैं तो बाहर नहीं जा पाता; मुझे इसी से खूब आनन्द होता है।"

दोपहर के समय महापुरुषजी कुछ विश्राम करने के बाद खाट पर बैठे हुए हैं—अन्तर्मुखी भाव है। बाद में एक सेवक से श्रीमद्भागवत पाठ करने के लिए कहा। उद्धव-संवाद का पाठ होने लगा। द्वादश अध्याय में सत्संग-माहात्म्य के सम्बन्ध में श्रीभगवान उद्धव से कहते हैं—

> न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
> न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥ १॥
> व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
> यथाऽवरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥ २॥

—'हे उद्धव ! अष्टांग योग, सांख्ययोग, लौकिक धर्माचरण, तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त, दान-दक्षिणा, व्रत-यज्ञ, वेदाध्ययन, तीर्थ-सेवा, यम, नियम आदि किसी भी क्रिया के द्वारा मनुष्य मुझे वैसा वशीभूत नहीं कर सकता, जैसा कि वह सभी प्रकार की आसक्ति के निवारक सत्संग के द्वारा करता है, अर्थात् सत्संग मेरा सामीप्य प्राप्त कराने में समर्थ है।'

'यथाऽवरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्' सुनते ही महापुरुषजी तद्गत-भाव से बोले, "अहा ! अहा ! कैसी सुन्दर बात है ! देखते हो, स्वयं भगवान कहते हैं कि साधु-संग की तुलना नहीं है। साधु-संग के फल से सर्वसंगापह अर्थात् समस्त आसक्ति-वर्जित अवस्था प्राप्त हो जाती है। समग्र कामना-वासना समूल विनष्ट हो जाती है और उस समय भगवान का सान्निध्य अनुभूत होता है। मनुष्य अपनी क्षुद्र शक्ति के द्वारा कितना साधन-भजन करेगा ? इसके अतिरिक्त, साधन-भजन अथवा तपस्या द्वारा ही क्या उनको प्राप्त किया जा सकता है ? भगवान हैं भक्तवत्सल। वे एकमात्र प्रेम और भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं। जहाँ व्याकुलता और अनुराग है, वहीं उनका प्रकाश होता है। इसी लिए तो ठाकुर ने कहा है—'भक्त का हृदय भगवान का बैठकखाना है।' साधन-भजन, त्याग-तपस्या आदि के द्वारा चित्त निर्मल होता है; और उसी विशुद्ध चित्त में भगवद्भक्ति का स्फुरण होता है और श्रीभगवान प्रकाशित होते हैं। असल बात है, आत्मीय भाव से उन्हें चाहना। गोपियाँ समझती थीं 'कृष्ण हमारे हैं'। कैसा अपनापन है ! वहाँ भगवद्बुद्धि नहीं है, मुक्ति-कामना भी नहीं है; है केवल अहेतुक प्रेम और शुद्धा भक्ति।

साधु-संग का ऐसा माहात्म्य है कि उसके फल-

स्वरूप भगवत्प्रेम उदय होता है। वास्तविक साधु कौन हैं? जिनके हृदय में भगवान प्रतिष्ठित हैं। अनेक जन्म-जन्मान्तर के पुण्य के फल से ठीक-ठीक साधु-संग और साधु-कृपा प्राप्त होती है। तुम लोगों के भी जन्म-जन्मान्तर के अनेक पुण्य हैं, जो ठाकुर के इस पवित्र संघ में आए हो। सत्संग के फल से मनुष्य के समग्र जीवन की गति एकदम बदल जाती है। और उसका फल भी बहुत दीर्घ काल तक स्थायी रहता है। हम लोगों ने अपने जीवन में ही देखा है—किसी दिन ठाकुर के निकट शायद दो-एक घण्टा ही रहे—और उस दिन कोई विशेष बातचीत भी नहीं हुई; किन्तु उसका फल बहुत दिन तक रहा। न जाने कैसा एक नशा-जैसा हो जाता था; सब समय भगवद्भाव में विभोर होकर रहते थे। अवश्य, ठाकुर की बात ही अलग है। वे थे साक्षात् भगवान—युगावतार। उनके कृपा-कटाक्ष से समाधि लग जाती थी—वे स्पर्श मात्र से ही भगवद्दर्शन करा सकते थे।

"सिद्ध पुरुषों के संस्पर्श में आने पर मनुष्य के मन में भगवद्भाव का स्फुरण होता ही है। यही तो मजा है! किसी ने सचमुच भगवान-लाभ किया है या नहीं—उसकी कसौटी भी यही है। भगवद्द्रष्टा पुरुष के समीप जाते ही हृदय में ईश्वरीय भाव जागरित हो उठता है। वैष्णव ग्रन्थों में एक अत्यन्त सुन्दर बात है—'जिन्हें देखने से प्राणों में उठे कृष्ण-नाम। उन्हें जानना तुम वैष्णव प्रधान।' जैसे अग्नि के पास जाने पर शरीर में गर्मी का बोध होता है, उसी प्रकार यथार्थ साधु-पुरुषों के पास जाने पर मन-प्राण भगवद्भाव में थिरक उठते हैं।

"'कुसुमेर सह कीट सुर सिरे जाय। सेइरूप साधु-संग अधमे तराय'—कुसुम के साथ जिस प्रकार कीट भी देवता के

सिर पर चढ़ते हैं, उसी प्रकार साधु-संग से अधम भी तर जाते हैं। संसार-ताप से दग्ध होने पर अथवा दुःख-कष्ट पड़ने पर ही साधु-संग की आवश्यकता है, सो बात नहीं। जो सुख के हिंडोले में झूलते हैं, भोग-विलास में मत्त हैं, वे भी यदि सुकृति के फल से साधु-संग करें, तो उनके मन से भी यह सब अनित्य सुख-भोग की लालसा चिरकाल के लिए निकल जायगी, नित्य सुख की ओर उनका मन अपने आप ही दौड़ेगा और सबसे श्रेष्ठ आनन्द— उस परमानन्द का आस्वादन कर उनका जीवन धन्य हो जायगा। ठाकुर के समीप भी कितने धनी-मानी लोग आए थे। उन्होंने दया करके उनके मन की गति को फिरा दिया। तब वे भगवदानन्द से भरपूर हो गए। हम लोग भी यदि ठाकुर के दर्शन न पाते, उनकी कृपा प्राप्त नहीं होती, तो क्या ऐसे हो सकते थे? उनकी कृपा की बात और क्या कहूँ? * * * ठाकुर तो और कोई नहीं हैं, वे माँ काली ही ठाकुर के रूप में प्रकाशित होकर जगत् का उद्धार कर रही हैं। अहा, कैसी दया — कितनी दया! हम लोगों का महाभाग्य है कि हमने ऐसे अवतारी पुरुष का सत्संग प्राप्त किया है। हम लोगों का जीवन धन्य हो गया है। तुम लोगों से भी कहता हूँ — वे हैं युगावतार, जीवों के रक्षक, त्राणकर्ता— भगवान। उनके शरणागत होकर पड़े रहो — सब हो जायगा। भक्ति, मुक्ति, सब पाओगे। मेरी यही एक बात है।"

### बेलुड़ मठ
#### बुधवार, २७ जुलाई, १९३२

अपराह्न काल। महापुरुषजी के कमरे की सफाई हो रही

है। इसलिए महापुरुष महाराज पास के कमरे में गंगाजी की ओर मुँह किए बैठे हैं और एक ब्रह्मचारी को 'कालीनामेर गंडी दिये आछि रे दाँड़िये' (काली-नाम का घेरा खींचकर खड़ा हूँ) — यह गीत स्वयं गा-गाकर सिखा रहे हैं। बीच-बीच में कफ के कारण गला रुद्ध हो आ रहा है। वे गला साफ कर गाते-गाते कह रहे हैं, "गला नहीं; अब क्या गाऊँ?" फिर भी कैसा मधुर कण्ठ था!

बाद में ब्रह्मचारी ने पूछा, "'के कानाइ नाम घुचाले तोर' इस गीत को क्या ठाकुर गाते थे?"

महापुरुषजी — "हाँ, यह गाना ठाकुर गाया करते थे।"

यह कहकर स्वयं गाने लगे —

'के कानाइ नाम घुचाले तोर, व्रजेर माखनचोर।
कोथा रे तोर पीतधड़ा, के निलो तोर मोहन चूड़ा,
नदे एसे नेड़ामूड़ा, परेछो कौपीन डोर॥
ए कि भाव रे कानाइ, कि अभावे रे कानाइ,
षडैश्वर्य त्याज्य करे परेछो कौपीन डोर।
अश्रुकम्प षड़भंग, पुलके पूर्णित अंग,
संगे लये सांग पांग, हरिनामे हये विभोर॥'*

* अरे व्रज के माखनचोर, तेरा कन्हैया नाम किसने बदल दिया? तेरा पीतवसन कहाँ है रे, किसने तेरी मोहन-चूड़ा ले ली, जो नदिया में आकर मूँड़ मुड़ा लिया है और कौपीन-डोर बाँध ली है? यह तेरा कैसा भाव है रे कन्हैया? किस अभाव से रे कन्हैया, तूने षडैश्वर्य त्यागकर यह कौपीन बाँध लिया है? अहा! कैसा अश्रु, कम्प और षड्भंग — सारा शरीर पुलकायमान हो रहा है! दल-बल को साथ ले हरिनाम में विभोर है!

गाना समाप्त होने पर थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "अहा! ठाकुर क्या ही सुन्दर गाते थे! और गाना गाते-गाते ही भावस्थ हो जाते थे। ऐसा मधुर और मत्त कर देनेवाला गान और किसी के भी मुख से नहीं सुना। उनके गान से मन और प्राण भरे हुए हैं। और कैसा मनोहर नृत्य! भाव में तन्मय होकर नाचते थे न! उस समय वे अत्यन्त सुन्दर दिखते थे। उनकी देह अत्यन्त सुडौल और कोमल थी। भाव के आनन्द से परिपूर्ण होकर वे नृत्य करते थे। वे सब दृश्य मानो अभी भी आँखों के सामने छा रहे हैं। उनका वह मनोहर नृत्य देखकर हम लोगों के मन में भी नाचने की इच्छा होती थी। वे भी हम लोगों को खींचकर पकड़-पकड़कर नचाते थे। कभी कहते —'लज्जा क्या रे? हरिनाम लेते हुए नृत्य करेगा, उसमें फिर लज्जा क्या? लज्जा, घृणा, भय — ये तीनों नहीं रहने चाहिए। जो हरिनाम में मत्त होकर नृत्य नहीं कर सकता, उसका जन्म ही व्यर्थ है।' यही सब कहा करते थे। वराहनगर मठ में हम लोग उस जीर्ण-शीर्ण घर में इतना नाचते थे कि भय होता था, कहीं घर टूटकर गिर न पड़े। अहा! धन्य महाप्रभु! जीवों के कल्याण के लिए उन्होंने क्या नहीं किया! यह उच्च नाम-संकीर्तन, हरिनाम की ध्वनि जहाँ तक पहुँचती है, वहाँ तक सब पवित्र हो जाता है। गिरीश बाबू ने अत्यन्त सुन्दर गीत रचा है — 'हरि बोल हरि बोल हरि बोल मन आमार! केशव कुरु करुणा दीने कुंज-काननचारी' इत्यादि।"

थोड़ी देर के बाद महापुरुषजी धीरे-धीरे गंगाजी की ओर के बरामदे में गए। चलते कष्ट हो रहा था। रेलिंग (लोहे की आड़) पकड़कर खड़े हो गंगाजी का दृश्य देखने लगे। एक शिष्य

ने अपने मन की दशा बताते हुए कहा कि उसे अब तक भगवान-लाभ नहीं हुआ, इससे उसके मन में बड़ी अशान्ति है। इस पर उन्होंने कहा, "ठाकुर के समीप रोओ; उन्हे पुकारो; धीरे-धीरे होगा। बच्चा, मन में शान्ति क्या ऐसे ही आ जाती है? खूब पुकारो, खूब रोओ।"

गंगाजी में एक पाल-बँधी नौका जा रही थी। उसे देखकर महापुरुषजी ने शिष्य से कहा, "दक्षिण की हवा में नौका किस तरह पाल उठाकर जा रही है—देखो, देखो। समझे? गुरु-कृपा साधन-भजन के लिए अनुकूल है। माँ की कृपा से तुम्हारे लिए सो तो हो गई है। अब खूब साधन-भजन करो। रात में कम खाना और खूब जप-ध्यान करना। जप-ध्यान का सर्वोत्कृष्ट समय है रात्रि। गंगा-तट, गुरु-स्थान और ऐसे साधुओं का संग—इससे अति शीघ्र होगा। बीच-बीच में रात में भोजन बन्द करके सन्ध्या से लेकर प्रातःकाल पर्यन्त जप करना। समस्त मन-प्राण लगाकर उनको पुकारना। काम-काज तो करोगे, किन्तु मन को सर्वदा भगवान के श्रीचरणकमलों में लिप्त रखना।" बाद में गुनगुनाने लगे—'पीले रे अवधूत, हो मतवाला, प्याला प्रेम हरिरस का रे' इत्यादि।

## बेलुड़ मठ

### बृहस्पतिवार, ६ अक्टूबर, १९३२

मठ में श्रीदुर्गा-पूजा हो रही है। प्रतिमा-निर्माण के समय से ही महापुरुषजी माँ दुर्गा के चिन्तन में आत्मविस्मृत हो, बालक के समान प्रतिक्षण 'माँ' 'माँ' कर रहे हैं। कई बार स्वयं ही

हृदय के आवेग में आह्वान-गान गा रहे हैं। और कभी-कभी मठ के किसी-किसी साधु को कोई नवीन आह्वान-गान सिखा रहे हैं। उनके हृदय का आनन्द-स्रोत मानो सहस्र धाराओं में प्रवाहित हो रहा है।

कल श्रीमाँ दुर्गा का बोधन‡ हो गया है। प्रातःकाल स्वामी तपानन्द ने एक गान खूब भाव के साथ गाया। महापुरुषजी बीच-बीच में भाव में तन्मय होकर 'अहा! अहा!' कर रहे हैं। अपने को सँभाल नहीं सक रहे हैं। बड़े कष्ट से भाव संवरण कर स्वयं ही गायक से बोले, "जा, जा, भाग, भाग। ठीक बाजार में हाँड़ी फोड़ दी! यह (स्वयं को उद्देश्य कर) तो मानो सूखी दियासलाई की सींक बना हुआ है। ठाकुर जैसा कहते थे, 'थोड़े में ही चट करके जल उठता है,' ठीक वही हुआ है।"

अपना भाव सँभाल न सकने के कारण जैसे कुछ लज्जित हो गए हों।

आज सप्तमी है। प्रातःकाल चार बजे से ही नौबत में आह्वान के स्वर बज रहे हैं। पूर्व निर्देशानुसार पूजा-घर में आह्वान-गान हो रहा है—

'शारद सप्तमी उषा गगनेते प्रकाशिलो,
दशदिक आलो करि दशभुजा माँ आसिलो।'* इत्यादि।

महापुरुषजी बीच-बीच में इस गान के स्वर में स्वर मिलाकर गा रहे हैं। बाद में स्वयं ही गाने लगे —

‡ दुर्गा-पूजा के पूर्व देवी के जागरण के लिए क्रियाविशेष।

* शारदीया सप्तमी उषा की लाली क्षितिज पर फैल गई। दस दिशाओं को आलोकित करते हुए दशभुजा माँ प्रकट हुई।

'आर जागास ने माँ जया, अबोध अभया
कतो करे उमा एइ घुमालो।' † इत्यादि।

पूजा-मण्डप में पूजा शुरू हो गई। मठ के साधुवृन्द और बहुत से भक्त स्त्री-पुरुष झुण्ड-के-झुण्ड महापुरुषजी के पास आ रहे हैं। वे भी सबको खूब आशीर्वाद दे रहे हैं और कह रहे हैं, "खूब आनन्द मनाओ। माँ आई हैं, अब आनन्द ही है, केवल आनन्द-ही-आनन्द।" प्रतिक्षण महापुरुषजी बड़ी उत्कण्ठा के साथ पूजा कहाँ तक आई, यह समाचार पूछ रहे हैं। प्राण-प्रतिष्ठा के समय तो वे और अधिक स्थिर नहीं रह सके, स्वयं पूजा-मण्डप में जाने के लिए आग्रह प्रकट करने लगे। तदनुसार उन्हें कुर्सी पर बिठाकर सेवकगण पूजा-मण्डप में ले आए। माँ का लाल हाथ जोड़कर माँ के सामने खड़ा हुआ है! कैसा दृश्य था — वर्णन नहीं किया जा सकता! प्राण-प्रतिष्ठा हो जाने पर महापुरुषजी माँ को भक्ति-भाव से प्रणाम कर ऊपर आए। बड़ा गम्भीर भाव है। मुखमण्डल एक दिव्य ज्योति से प्रदीप्त है।

दिन भर लोगों की भीड़ रही। आज सबके लिए द्वार खुले हैं। महापुरुषजी सबको हृदय खोलकर आशीर्वाद दे रहे हैं। भक्तगण प्रसाद लेने के बाद परिपूर्ण हृदय से लौट रहे हैं।

सन्ध्या-आरती के बाद मठ के साधुगण काली-कीर्तन कर रहे हैं। मठ के दो-चार साधु महापुरुषजी के कमरे में बैठे हैं। आज महापुरुषजी को बिलकुल ही थकावट नहीं मालूम हो रही है। दिन भर आनन्द में मस्त हैं। निकटस्थ साधुओं को लक्ष्य कर वे कह रहे हैं, "देखो, मठ में जैसी माँ की पूजा होती है,

† ओ जया, उसे जगाना नहीं। उमा दुःखी और उद्विग्न है और अभी ही सोई है।

वैसी और कहीं नहीं होती। यहाँ की पूजा ठीक-ठीक भक्ति की पूजा है। हम लोगों की कोई कामना नहीं है, हम तो केवल माँ की प्रीति के लिए यह पूजा करते हैं। हम लोगों की केवल एक प्रार्थना है, 'माँ, तुम प्रसन्न होओ और हम लोगों को भक्ति-विश्वास दो, समस्त जगत् का कल्याण करो।' क्या कहते हो? इतने सब साधु-ब्रह्मचारी मन लगाकर माँ की आराधना करते हैं, तो क्या माँ बिना प्रसन्न हुए रह सकती है? तुम सब लोग सर्वत्यागी मुमुक्षु हो, तुम लोगों की कातर पुकार से माँ क्या बिना उत्तर दिए रह सकती है? यहाँ जैसा माँ का प्रकाश है, वैसा और कहीं नहीं मिलेगा बच्चा, ठीक कहता हूँ। लोग लाखों रुपया खर्च कर सकते हैं, किन्तु ऐसी भक्ति, ऐसा विश्वास कहाँ पाओगे? हम लोगों की तो सात्विक पूजा है। अहा, अनंग बड़े भक्ति-भाव से यह सब पूजा आदि करता है। शास्त्र में कहा है, यदि प्रतिमा सुन्दर हो, पूजक भक्तिमान हो और जो पूजा करावें, वे शुद्धसत्त्व और निष्काम हों, तभी उस पूजा में भगवान का विशेष आविर्भाव होता है। यहाँ यह सभी है, इसी लिए माँ का इतना आविर्भाव है। मठ में सब ठीक-ठीक होता है। हम लोगों के ठाकुर धर्म-संस्थापन के लिए आए थे। बीच में यह सब पूजा आदि तो एक प्रकार से लुप्त ही हो गई थी। ठाकुर आकर इन सबमें मानो एक नवीन spirit (प्राण) भर गए। इसी लिए यह सब पुनर्जीवित हो उठा है। फिर से बहुत से लोग इस सब पूजा आदि का अनुष्ठान करने लगे हैं। हमारे उस वराहनगर मठ से ही स्वामीजी ने दुर्गा-पूजा आरम्भ की थी। उस समय घट में ही पूजा होती थी। उसके बाद इस मठ में भी स्वामीजी ने ही सर्वप्रथम प्रतिमा-पूजा की।

पूजा के समय श्रीश्रीमाँ भी कुछ दिन यहाँ आकर रही थीं — पास के मकान में। माँ ने कहा था कि प्रतिवर्ष माँ दुर्गा यहाँ आवेंगी।"

एक संन्यासी — "अच्छा महाराज, कहते हैं, पूजा में अज-बलि आवश्यक है,— सो क्या अज-बलि छोड़कर भी पूजा हो सकती है?"

महाराज — "सो क्यों नहीं हो सकती? वे ही तो वैष्णवी शक्ति के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। हम लोगों के मठ में बलि नहीं होती, यहाँ की तो सात्त्विक पूजा है। शास्त्र में मनुष्य के प्रकृति-भेद से तीन प्रकार की पूजा का निर्देश है — सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक पूजा में कोई बाह्य आडम्बर नहीं होता, ऐसी कोई विशेष सजावट नहीं होती। केवल भक्ति की पूजा, निष्काम भाव से माँ की प्रीति के लिए पूजा है। हम लोग भी उसी भाव से पूजा करते हैं। और जो लोग राजसिक अथवा तामसिक प्रकृति के हैं, उनकी पूजा आदि भी उसी के अनुरूप होती है। सकाम पूजा में खूब तड़क-भड़क रहता है। ऐसे लोगों के लिए शास्त्रों में पशु-बलि का निर्देश है। सार बात क्या है, जानते हो? उनके श्रीपादपद्मों में शुद्धा भक्ति लाभ करना। इन सब पूजा आदि का उद्देश्य भी तो वही है। माँ को यदि एक बार हृदय-मन्दिर में ठीक-ठीक प्रतिष्ठित किया जा सके, तो फिर बाह्य आडम्बर की आवश्यकता नहीं रहती। अब माँ आ गई हैं, माँ को लेकर आनन्द करो। हम लोगों के लिए, बच्चा, विसर्जन नहीं है। माँ भला जाएँगी ही कहाँ? माँ तो सदा यहीं विराजमान हैं। 'संवत्सरव्यतीते तु पुनरागमनाय च'— यह तो बाहर की बात है, साधारण लोगों की बात है।

हम लोग जानते हैं कि माँ सर्वदा हम लोगों के हृदय-मन्दिर में ही विराजमान हैं।"

## बेलुड़ मठ
### १९३२

आजकल महापुरुष महाराज को अकसर नींद नहीं आती। सब समय किसी-न-किसी दिव्य भाव की प्रेरणा से विमल आनन्द में विभोर रहते हैं। दिन में मठ के साधु-ब्रह्मचारी और अगणित भक्तों के साथ अनेकविध कथा-प्रसंग के समय उनके मन के उस आनन्द-भाव का कुछ आभास बाहर आ निकलता है। कभी-कभी तो इतने ऊँचे स्तर की बात कहते हैं कि बहुत से व्यक्ति उसका मर्म नहीं समझ सकते। विशेष कर रात्रि में ही उनका खूब भावान्तर देखा जाता है। कभी तो आत्माराम होकर, मन के आनन्द में विभोर हो गुनगुनाते हुए गाना गाने लगते हैं, तो कभी उपनिषद्, गीता, चण्डी अथवा भागवत आदि ग्रन्थों के श्लोकों का उच्चारण करने लगते हैं और आवृत्ति करते-करते बीच-बीच में चुप हो रहते हैं। कितने ही समय उनका बाह्य जगत् अथवा आसपास की अवस्था का ज्ञान बिलकुल लुप्त हो जाता है।

एक दिन की बात है। वे खाट पर चुपचाप बैठे हैं; आँखें मुँदी हैं। रात के लगभग दो बजे हैं। सारा मठ निस्तब्ध है। काफी देर इसी अवस्था में ध्यानस्थ होकर बैठे रहने के बाद धीरे-धीरे अपने मन-ही-मन गुनगुनाने लगे—

"आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥
विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥" *

बाद में निकटस्थ सेवक की ओर देखकर कहा, "इसका अर्थ क्या है, जानता है ?" सेवक के मौन रहने पर वे स्वयं कहने लगे, "जिस प्रकार सदा परिपूर्ण और अचल भाव से अवस्थित समुद्र के भीतर अनेक नद-नदियों का जल आकर प्रवेश करता है पर फिर भी समुद्र उससे बिलकुल विचलित नहीं होता, उसी प्रकार समुद्रवत् सदा परिपूर्ण एवं ब्रह्मानन्द में स्थित ज्ञानी के हृदय में प्रारब्धवश कामनाओं के प्रवेश करने पर भी उनका मन तनिक भी चलायमान नहीं होता — वे कैवल्यरूप शान्ति-लाभ से आत्माराम होकर रहते हैं। किन्तु भोग-कामनाशील व्यक्ति को शान्ति नहीं मिलती। जो व्यक्ति समस्त कामना-वासनाओं का परित्याग कर निःस्पृह, निरहंकार और ममत्व-बुद्धि से शून्य होकर विचरण करते हैं, वे ही वास्तविक शान्ति लाभ करते हैं।

"कामना-वासना रहने पर चिरशान्ति लाभ करना असम्भव है। फिर, उस कामना-वासना का भगवत्कृपा के बिना समूल नष्ट होना भी सम्भव नहीं है। ठाकुर ने कृपा करके मेरी समस्त कामना-वासनाओं को बिलकुल मिटा दिया है; कोई वासना अब नहीं रही। यह शरीर केवल उनकी इच्छा से, उन्हीं के कार्य के लिए बचा हुआ है; मैं तो शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हूँ। अनेक समय तो मन में ही नहीं आता कि यह शरीर है भी। फिर भी, प्रभु अपने अनेक कार्य इस शरीर से करा ले रहे हैं, इसी लिए

* गीता — २।७०-७१

उन्होंने अब भी इसे रख छोड़ा है। किन्तु मेरी कोई वासना नहीं, समझा ? मैं ब्रह्मानन्दस्वरूप हूँ।"

इतना कहकर महापुरुषजी धीर भाव से स्थिर हो बैठे रहे। उस समय उनका चेहरा बिलकुल बदल गया — वे मानो एक नए व्यक्ति हों। उनकी ओर देखने में कुछ घबड़ाहट-सी लगती थी। कुछ देर बाद वे मन-ही-मन कहने लगे, "माँ ने मुझ पर कृपा कर सब कुछ दे दिया है। अपना भण्डार खाली कर उन्होंने मुझे भरपूर कर दिया है। अब इच्छा करने के लिए कुछ रहा ही नहीं। उनकी कृपा से सब मिल गया है—'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।'* तो भी उन्होंने इस शरीर को क्यों रख छोड़ा है यह वे ही जानें।"

गम्भीर रात्रि। महापुरुषजी अपनी खाट पर बैठे हुए हैं— ध्यानस्थ। बहुत देर तक ध्यानमग्न रहने के बाद अपने ही भाव में डूबे हुए बैठे हैं—कभी-कभी आँखें खोलकर देख लेते हैं और फिर आँखें बन्द कर लेते हैं। इसी समय एकाएक एक बिल्ली कमरे में आकर म्याऊँ-म्याऊँ करने लगी। उन्होंने उसकी ओर देखकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उन्होंने जो बिल्ली को प्रणाम किया, यह निकटस्थ सेवक पहले तो समझ ही न सका। इसलिए ज्योंही उसने कुछ सन्दिग्ध-चित्त से उनकी ओर देखा, तो उन्होंने कहा, "देख, ठाकुर ने इस समय मुझे ऐसी अवस्था में रखा है कि सब कुछ 'चिन्मय' देख रहा हूँ; घर-द्वार, खाट-बिछौना तथा सभी प्राणियों के भीतर उसी एक चैतन्य का खेल है— केवल भेद है नाम का; किन्तु मूल में सब एक ही हैं। अत्यन्त स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ! अनेक चेष्टा करने पर भी उस भाव को

* गीता — ६।२२

नहीं सँभाल पा रहा हूँ। सभी चैतन्यमय है। इस बिल्ली के भीतर भी उसी चैतन्य का प्रकाश झलझला रहा है। इसी भाव में ठाकुर ने आजकल मुझे भरपूर कर रखा है। लोग आते हैं, जाते हैं; बातचीत करनी पड़ती है इसलिए करता हूँ; साधारण काम-काज अथवा आहार आदि करना पड़ता है इसलिए करता हूँ। मानो अभ्यास-वश यह सब किए जा रहा हूँ। किन्तु इन सबसे मन को थोड़ा सा उठा लेते ही, देखता हूँ कि सर्वत्र उसी चैतन्य का खेल चल रहा है। नाम-रूप तो अति निम्न स्तर की बात है। नाम-रूप के ऊपर मन जाते ही बस! तब सभी चैतन्य-मय है, आनन्दमय है! यह सब वाणी द्वारा नहीं समझाया जा सकता। जिसे वह अवस्था होती है, वही जानता है।" और भी कुछ कहने जा रहे थे, पर एकाएक चुप हो गए। सेवक मुग्ध हृदय से आश्चर्य-चकित हो खड़ा रहा। * * *

केवल गुरु-सेवा से ही सब होने का नहीं, साथ-साथ तीव्र साधन-भजन की भी खूब आवश्यकता है — इस सम्बन्ध में महापुरुष महाराज सेवकों से बारम्बार कहा करते थे। साधन-भजन के बिना केवल महापुरुषों का संग अथवा सेवा करने से बहुधा मन में अहंकार-अभिमान आ जाने का डर रहता है — इस विषय में भी वे सेवकों को विशेष सतर्क कर दिया करते थे। एक दिन गम्भीर रात्रि मे उन्होंने एक सेवक से कहा, "देख, मेरी सेवा करता है, सो बहुत अच्छी बात है। ठाकुर की तुझ पर अत्यन्त कृपा है, जो तेरे द्वारा वे अपनी एक सन्तान की सेवा करा ले रहे हैं। किन्तु, बच्चा, साथ-साथ साधन-भजन भी करना चाहिए। नियमित जप-ध्यान और साधन-भजन करने पर ही ठाकुर क्या थे; सो ठीक-ठीक जान पाएगा। हम लोगों

के प्रति मानव-बुद्धि आते ही नष्ट हो जायगा — इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना। भगवद्बुद्धि लाने के लिए चाहिए तीव्र साधना। भगवान का नाम और उनका ध्यान करते-करते मन के संस्कृत होने पर उस शुद्ध मन में भगवद्भाव की उद्दीप्ति होती है। हमने ठाकुर को देखा है, उनका संग किया है, उनकी कृपा प्राप्त की है; तो भी उन्होंने हम लोगों से कितनी साधना करा ली है! वे भगवान थे, जगत् को मुक्ति देने के लिए आए थे — इस बात को पहले हम लोग ही क्या ठीक-ठीक समझ सके थे? क्रमशः साधन-भजन के द्वारा वह ज्ञान पक्का हो गया है। यह अवश्य है कि उनकी कृपा के बिना कुछ नहीं होता। परन्तु कातर होकर पुकारने पर, व्याकुल होकर चाहने पर, वे कृपा करते ही हैं। वे भगवान थे, साक्षात् देवाधिदेव जगन्नाथ थे — यह क्रमशः समझ पा रहा हूँ। उनका वास्तविक स्वरूप क्या है, सो उन्होंने कृपा करके स्वयं जना दिया है।

"गम्भीर रात्रि में जप करना। महानिशा में जप करने से फल अति शीघ्र प्राप्त करेगा। समग्र मन-प्राण आनन्द से परिपूर्ण हो जायँगे। इतना आनन्द पाएगा कि जप छोड़कर उठने की इच्छा ही नहीं होगी। मेरी सेवा के लिए जागना तो पड़ता ही है। अतः इस समय बैठे-बैठे जप करना। यहाँ सब समय तो काम रहता नहीं। कभी लगा तो किसी काम की जरूरत पड़ जाती है। तेरे लिए तो यह खूब सुविधा है। खूब जप करना — समझा? समय व्यर्थ मत जाने देना, बच्चा। उनके नाम में बिलकुल निमग्न हो जाना होगा, ऊपर-ऊपर उतराने से कुछ भी नहीं होगा। जितना भी करेगा, तन्मय होकर करना; तभी आनन्द पाएगा। •इसी लिए तो ठाकुर

गाया करते थे —'डूब दे रे मन काली बोले, हृदि रत्नाकरेर अगाध जले' (ऐ मन, काली कहते हुए हृदयरूपी समुद्र के अगाध जल में डुबकी लगा)। जो कोई कार्य तन्मय होकर नहीं किया जाता, उसमें आनन्द नहीं आता। वे देखते हैं हृदय,आन्तरिकता; वे समय नहीं देखते। जप-ध्यान नित्य नियमित भाव से करने पर मन शुद्ध हो जाता है और वह भाव हृदय में पक्का हो जाता है। नित्य निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। गीता में भगवान ने कहा है —'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'* व्याकुलतापूर्वक रो-रोकर उन्हें नित्य पुकारता जा; देखेगा, वे ब्रह्मशक्ति कुल-कुण्डलिनी जाग उठेंगी, ब्रह्मानन्द का मार्ग खोल देंगी। वे ब्रह्ममयी माँ प्रसन्न हुई कि सब हो गया। चण्डी में है —'सैपा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये' (वे ही प्रसन्न होने पर मानवों को मुक्ति के लिए वर देती हैं)। वे तो देने के लिए दोनों हाथ बढ़ाए हुए ही हैं; पर लेता कौन है? उनके पास थोड़ा व्याकुल होकर प्रार्थना करने से ही वे सब दे देती हैं — भक्ति, मुक्ति सब।

"घर-द्वार छोड़कर भगवत्प्राप्ति के लिए यहाँ आया है। यही तो जीवन का उद्देश्य है। असल बात कहीं भूल न जाना। खूब परिश्रम करके, निरन्तर जप-ध्यान, स्मरण-मनन करके ठाकुर को हृदय में प्रतिष्ठित कर ले; फिर आनन्द-ही-आनन्द— बड़े मजे में रहेगा। सब शरीरों का ही नाश होगा। हम लोगों का भी शरीर भला अब और कितने दिन? यह तो वृद्ध शरीर है! अब चला-चली ही है — तब सर्वत्र अन्धकार दिखलाई देगा। किन्तु जप-ध्यान करके यदि इष्ट-दर्शन कर सका, तो

* गीता — ६।३५

उस समय देखेगा कि गुरु और इष्ट एक ही हैं और गुरु तेरे हृदय-मन्दिर में ही चिर-प्रतिष्ठित हैं। स्थूल देह के नाश होने से गुरु का नाश नहीं होता। तुम लोगों को स्नेह करता हूँ, इसी लिए इतना कहता हूँ। तुम लोगों का जिससे यथार्थ कल्याण हो, वही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।

* * * *

"तुम सब मेरे पास हो; मेरा शरीर अस्वस्थ है, इसलिए दिन-रात मेरी सेवा करते हो। सो बहुत अच्छा है! किन्तु एकमात्र तुम्हीं लोग मेरी सेवा कर रहे हो और एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हो ऐसा यदि सोचो, तो यह बहुत बड़ी भूल है, समझा? कोई चीज थोड़ा सामने सरकाकर, इस देह की थोड़ी सेवा करने से ही समझते हो मेरी खूब सेवा हो गई? सो नहीं। बहुत दूर रहकर भी यदि कोई मन-प्राण देकर प्रभु का कार्य करे, तो उससे भी हम लोगों की सेवा हो जाती है। ठाकुर हैं हम लोगों की अन्तरात्मा। जो हजार-हजार मील दूर रहकर भी तन-मन-वचन. से प्रभु का कार्य कर रहे हैं, साधन-.भजन द्वारा प्रभु को हृदय में प्रतिष्ठित किए हुए हैं, वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं, वे भी मेरी ही सेवा कर रहे हैं। उनको (प्रभु को) सेवा द्वारा तुष्ट करने से ही मैं तुष्ट हुआ। 'तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टम्।' प्रभु का कार्य करने से वे लोग गुरु-सेवा की अपेक्षा और भी अधिक फल पाएँगे।"

## बेलुड़ मठ
## १९३२

प्रातःकाल। मठ के अनेक साधु-ब्रह्मचारी महापुरुष महाराज

को प्रणाम . कर चले गए हैं । एक संन्यासी ने आकर प्रणाम किया और अपने हृदय की घोर अशान्ति तथा नैराश्य की बात अत्यन्त व्याकुल होकर महापुरुषजी के समीप निवेदित की । यह सुनकर महापुरुषजी ने कहा, "भय क्या बच्चा, शरणागत होकर पड़े रहो उनके द्वार पर, वे किसी को भी विमुख नहीं करते ।"

संन्यासी —"इतने दिन व्यर्थ चले गए; अभी भी भगवत्प्राप्ति नहीं हुई, शान्ति नहीं मिली । कभी-कभी तो घोर अविश्वास आकर मन में घर कर लेता है । इतने दिन तक आप लोगों के समीप जो उपदेश सुने हैं, उन सबमें भी सन्देह-सा होने लगता है ।"

यह सुनकर महापुरुष महाराज का मुख एकदम लाल हो उठा । वे थोड़े उत्तेजित-से होकर बोले, "देखो बच्चा, ठाकुर यदि सत्य हैं, तो हम लोग भी सत्य हैं । जो कहता हूँ, ठीक-ठीक कहता हूँ; हम लोग किसी को ठगने नहीं आए । यदि हम लोग डूबेंगे, तो तुम लोग भी डूबोगे । किन्तु उनकी कृपा से जान लिया है कि हम लोग डूबेंगे नहीं, अतएव तुम लोग भी नहीं डूबोगे ।"

* * * *

महापुरुष महाराज अधिक चल-फिर नहीं सकते । इसलिए एक सेवक के ऊपर भार दिया गया था कि वह प्रतिदिन अपराह्न काल में लगभग घंटा-डेढ़ घंटा सारे मठ में घूमकर अस्वस्थ साधु-ब्रह्मचारियों की, गाय और बछड़ों की तथा मठ के अन्यान्य विषयों की खोज-खबर लेगा और सब समाचार महापुरुषजी को विस्तृत रूप से सूचित करेगा । एक दिन यथारीति सम्पूर्ण मठ घूमकर, सब समाचार आदि लेकर सेवक जब ऊपर गया, तो

देखता हूँ कि महापुरुषजी अकेले खूब गम्भीर भाव में बैठे हुए हैं। आँखें अर्ध-निमीलित हैं, मानो जोर करके बाहर की ओर देख रहे हैं। सेवक सामने आकर खड़ा हुआ। पर उन्होंने अन्य दिन की भाँति कोई प्रश्न नहीं किया। ऐसा लगा, मानो सेवक की उपस्थिति का भान ही उन्हें नहीं हुआ। उनका इस प्रकार भावान्तर देखकर सेवक चकित हो एक ओर हट गया। इस प्रकार कुछ देर बीतने के बाद जब वे थोड़ा इधर-उधर देखने लगे, तब सेवक सामने गया और प्रतिदिन की भाँति सब समाचार बताने ही वाला था कि महापुरुषजी गम्भीर भाव में बोले, "देखो, मेरे लिए इस जगत् का कोई अस्तित्व ही नहीं रहा; एकमात्र ब्रह्म ही रहे हैं। जोर करके मन को नीचे उतारे रखने के लिए ही बातचीत करता हूँ और इधर-उधर का समाचार भी पूछा करता हूँ।" केवल इतना कहकर वे पुनः गम्भीर हो बैठे रहे। उस दिन उन्होंने और कोई भी समाचार नहीं सुना।

* * * *

वराहनगर मठ में निवास के समय स्वामीजी के सम्बन्ध में अपने एक दर्शन की बात उन्होंने एक दिन कही—"देखो, वराहनगर मठ में स्वामीजी के साथ रहते समय एक आश्चर्यजनक घटना हुई थी। उस समय हम लोग ऊपर के बड़े कमरे में एक साथ ही सोते थे। बिछौना आदि तो विशेष कुछ था नहीं। एक बहुत बड़ी मच्छरदानी थी; उसी को तानकर सब एक ही मच्छरदानी के नीचे सो जाते थे। एक रात में स्वामीजी के पास सो रहा था। उस मच्छरदानी के नीचे शशी महाराज*

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी रामकृष्णानन्द।

तथा और भी कौन-कौन थे। गम्भीर रात में नींद खुलते ही देखता हूँ मच्छरदानी का भीतरी भाग एकदम आलोकित हो गया है। स्वामीजी तो मेरे पास ही सोए थे; किन्तु देखता हूँ कि स्वामीजी वहाँ नहीं हैं! उनके स्थान पर वहाँ छोटे-छोटे सात-आठ वर्ष के बालकों के समान दिगम्बर, सुन्दर, जटाजूट-धारी, श्वेतवर्ण बहुत से शिव सोए हुए हैं! उन्हीं की अंग-कान्ति से सब आलोकित हो गया है। मैं तो यह देखकर बिलकुल आश्चर्यचकित हो गया। पहले तो कुछ समझ ही न पाया कि यह सब क्या है! सोचा कि यह नेत्र-भ्रम है। अच्छी तरह आँखें मलकर फिर से देखा; ठीक उसी प्रकार वे सुन्दर छोटे-छोटे शिव सोए हुए थे। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। सोने की इच्छा भी नहीं होती थी — भय था कि नींद के नशे में मेरा पैर कहीं शिवों के शरीर से छू न जाय। वह रात मैंने ध्यान में ही बिता दी। सवेरे देखता हूँ कि स्वामीजी जैसे सोए हुए थे, वैसे ही सो रहे हैं। प्रात:काल होने पर स्वामीजी से सब कहा। वे सुनकर खूब हँसने लगे।

"इसके अनेक दिन बाद जब मैं वीरेश्वर शिव का स्तोत्र * पढ़ रहा था, तो देखता हूँ कि उनके ध्यान में ठीक ऐसे ही रूप

* वीरेश्वर स्तोत्रम् (आंशिक)

विभूतिभूषितं बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम्,<br>
आकर्णपूर्णनेत्रं च सुवक्त्रदशनच्छदम्।<br>
चारुपिंगजटामौलिं नग्नं प्रहसिताननं,<br>
शैशवोचित-नेपथ्यधारिणं चित्तहारिणम्॥ इत्यादि।

(विभूतिभूषित आठ वर्ष के बालक; उनके नेत्र कानों तक फैले, मुख और दन्तपंक्ति सुन्दर, मस्तक पर सुन्दर पिंगलवर्ण की जटा; उनका शरीर नग्न और मुख सहास्य, उनके अंगों पर शैशवोचित मनोहर अलंकार।)

का दर्शन है ! तब जाना कि मैंने ठीक ही देखा था। यही स्वामीजी का स्वरूप है। इन्हीं शिव के अंश से ही तो उनका जन्म हुआ था न—इसी लिए इस प्रकार के दर्शन हुए थे।"

* * * *

महापुरुष महाराज का स्वास्थ्य क्रमशः गिरता जा रहा है। चलना-फिरना एक प्रकार से बन्द ही हो गया है। नीचे उतरकर घूमना तो दूर की बात रही, ऊपर भी दूसरों की सहायता के बिना अधिकतर चल-फिर नहीं सकते। एक दिन उन्होंने कहा, "बाहर की क्रिया जितनी कम होती जा रही है, भीतर की क्रिया उतनी ही बढ़ती जा रही है। उस परमानन्द की खान तो भीतर में ही है। इस समय इसी प्रकार चलेगा, यही ठाकुर की इच्छा है।" और वे बहुधा मधुर स्वर से इस गीत को गाते—"शमन आसार पथ घुचेछे; (आमार) मनेर सन्द दूरे गेछे" (यम के आने का मार्ग नष्ट हो गया है। मेरे मन के सन्देह दूर हो गए हैं) इत्यादि। अपने दर्शन आदि की बातें भी बीच-बीच में कुछ-कुछ बताया करते थे। एक दिन सन्ध्या का समय था। ठाकुर की आरती शुरू नहीं हुई थी, कुछ ही क्षण पहले सब कमरों के प्रदीप जलाए गए थे। महापुरुष महाराज चुपचाप ठाकुर की ओर मुँह करके बैठे हुए थे। एकाएक बोले, "दे, दे; मुझे विश्वनाथ की विभूति दे और बिस्तर पर एक रेशमी चादर झट बिछा दे। अहा, ये ठाकुर जो आए हैं, महादेव आए हैं।" यह कहते-कहते एकदम ध्यानस्थ हो गए। उस दिन बहुत रात तक इसी प्रकार ध्यानस्थ रहे।

और एक दिन अपराह्न काल में कहा, "अभी ही

स्वामीजी और महाराज आए थे। उन्होंने कहा, 'चलो तारक दादा!' तुम लोग नहीं देख पाए? वे तो सामने ही खड़े थे!"

* * * *

आत्मज्ञ पुरुषों के छोटे-मोटे काम-काज और बातचीत के भीतर भी एक गूढ़ रहस्य निहित रहता है। साधारण मानव यदि अपनी क्षुद्र बुद्धि की कसौटी पर ब्रह्मज्ञ पुरुषों के कार्यों को कसे और किसी सिद्धान्त पर पहुँचे, तो बहुधा वह सिद्धान्त भूल से रहित नहीं होता। सम्भवतः १९१२ ई. में, कठिन रक्त-आमातिसार रोग के बाद से ही महापुरुष महाराज आहार आदि के सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखने लगे थे। उनका दोपहर का आहार था अत्यन्त साधारण झोल-भात और सामान्य भाते-भात *। पूजनीय शरत् महाराज ने हँसी में उस झोल का नाम रखा था 'महापुरुष का झोल'। रात्रि का आहार भी उसी प्रकार अल्प और अत्यन्त सादा था। किन्तु १९३३ ई. में संन्यास-रोग से पीड़ित होकर उनकी वाक्-शक्ति के बिलकुल रुद्ध हो जाने के कोई एक वर्ष पहले, वे सेवकों से कभी-कभी कोई अच्छा खाद्य पदार्थ बनाने के लिए कह दिया करते थे अथवा कोई विशिष्ट वस्तु खाने की इच्छा प्रकट कर दिया करते थे। उनका इस प्रकार का भावान्तर देख मठ के समस्त साधुओं और सेवकों को कुछ विस्मय-सा होने लगा; क्योंकि उनका शरीर उस समय अत्यन्त अस्वस्थ था और डाक्टर भी उनसे बहुधा केवल पेय पदार्थ लेने को ही कहते थे।

एक दिन सवेरे वे चुपचाप बैठे हुए थे। कुछ देर बाद एकाएक कहने लगे, "देखो, ठाकुर पाँकाल मछली की बात कहा

* भात और उसके साथ उबाला हुआ अन्य खाद्य।

करते थे। वे कहते थे—'पाँकाल मछली कीचड़ में रहती तो है, किन्तु उसकी देह पर कीचड़ का दाग तक नहीं लगता। उसी प्रकार जो भगवान की प्राप्ति करके संसार में रहता है, उसके मन पर संसार की छाप नहीं पड़ती।' अच्छा, यह पाँकाल मछली कैसी होती है, सो एक बार देखना है।" बहुत चेष्टा करने पर वराहनगर के एक मछुए की सहायता से तीन-चार पाँकाल मछलियाँ मिल सकीं। वे इन मछलियों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। बालकों की तरह आनन्द करने लगे। बाद में कहा, "यह लो, हो गया पाँकाल मछली देखना। इच्छा हुई थी, इसलिए थोड़ा देख लिया।" फिर हँसते-हँसते बोले, "ठाकुर कहते थे कि छोटी-मोटी वासनाओं को मिटा लेना चाहिए। सो भला कौन जाने, यदि इतनी सी वासना के लिए फिर जन्म लेना पड़े!"

संन्यास-रोग होने से कुछ दिन पहले पका आम खाने की उनकी इच्छा हुई। उस समय तक बाजार में अच्छा आम नहीं आया था। कलकत्ते के सभी बाजारों में खोजकर उनके लिए कुछ आम लाए गए। उन्होंने केवल एक आम अपने लिए रखकर शेष सब ठाकुर के भोग के लिए दे दिए और सेवक से कहा कि वह खाने के समय उस एक आम का रस बनाकर दे। उस समय वे दमे से पीड़ित थे। अतएव आम का रस खाने से कैसा भयानक परिणाम होगा, यह सोचकर ही सेवकगण तो घबड़ा उठे। अन्त में प्रधान सेवक ने डाक्टरों का परहेज बताकर उनसे आम का रस न खाने के लिए अनुरोध किया। किन्तु बारम्बार अनुरोध किए जाने पर भी उन्होंने बड़े गम्भीर भाव से कहा, "मैं कहता हूँ खाऊँगा।" आहार समाप्त होने के समय उनके सामने जब आम का रस रखा गया, तो वे उसमें उँगली डुबाकर जरा सा

जीभ में लगाकर बोले, "मेरा आम का रस खाना हो गया! इच्छा हुई थी, इसी लिए थोड़ा सा मुँह में डाल लिया। * * * मुझे क्या खाने का लोभ है? मैं क्यों जरा सा यह-वह माँगकर खाता हूँ, उसका अभिप्राय दूसरे लोग क्या समझेंगे?" बाद मे मानो कुछ उत्तेजित-से होकर कहने लगे, "खाने के सम्बन्ध मे मुझे सिखाने आया है! जानते हो, इच्छा मात्र से इसी क्षण इस शरीर को भी छोड़ सकता हूँ? फिर तुच्छ भोजन की बात क्या! स्वामीजी ने क्या ऐसे ही 'महापुरुष' नाम रखा था?" * * * इत्यादि अनेक बातें उन्होंने उस दिन कहीं। दिन भर वे खूब गम्भीर रहे। देखने पर मन में होता था कि उनका मन मानो अन्य राज्य में विचरण कर रहा है।

*　　*　　*　　*

एक स्त्री भक्त का एकमात्र लडका सख्त बीमार था। चिकित्सा आदि के द्वारा भी बीमारी ठीक नही हुई। और जब डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया, तो वह स्त्री भक्त दूसरा कोई उपाय न देखकर लाचार हो महापुरुषजी के चरणों में आई और रो-रोकर कहने लगी, "बाबा, आप एक बार कह दीजिए कि मेरा लाल अच्छा हो उठेगा।" महापुरुषजी ने धीर भाव से सब सुन लिया। स्त्री भक्त की बारम्बार कातर प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा, "ठाकुर की इच्छा होगी तो अच्छा हो जायगा।" किन्तु वह बालक कुछ दिन के बाद मर गया। तब एकमात्र सन्तान को भी खोकर वह स्त्री भक्त उनके पास आकर अत्यन्त विलाप करने लगी और उन पर दोषारोपण करती हुई कहने लगी, "आपने तो कहा था — बच्चा अच्छा हो जायगा; तब मर क्यों गया? अब मैं किसे देखकर रहूँ?" स्त्री भक्त बारम्बार

करते थे। वे कहते थे—'पाँकाल मछली कीचड़ मे
किन्तु उसकी देह पर कीचड़ का दाग तक नहीं
प्रकार जो भगवान की प्राप्ति करके संसार में र
मन पर संसार की छाप नहीं पड़ती।' अच्छा, यह
कैसी होती है, सो एक बार देखना है।" बहुत चे
वराहनगर के एक मछुए की सहायता से तीन-
मछलियाँ मिल सकीं। वे इन मछलियों को देख
हुए। बालकों की तरह आनन्द करने लगे। बाद
लो, हो गया पाँकाल मछली देखना। इच्छा हुई
थोड़ा देख लिया।" फिर हँसते-हँसते बोले, "ठा
छोटी-मोटी वासनाओं को मिटा लेना चाहिए।
जाने, यदि इतनी सी वासना के लिए फिर जन्म

सन्यास-रोग होने से कुछ दिन पहले पका
उनकी इच्छा हुई। उस समय तक बाजार में अ
आया था। कलकत्ते के सभी बाजारों में खोज
कुछ आम लाए गए। उन्होंने केवल एक आम अ
शेष सब ठाकुर के भोग के लिए दे दिए और
वह खाने के समय उस एक आम का रस बनाकर
दमे से पीड़ित थे। अतएव आम का रस खाने
परिणाम होगा, यह सोचकर ही सेवकगण तो
में प्रधान सेवक ने डाक्टरों का परहेज बताव
रस न खाने के लिए अनुरोध किया। किन्तु
किए जाने पर भी उन्होंने बड़े गम्भीर भाव से
हूँ खाऊँगा।" आहार समाप्त होने के
आम का रस रखा गया, तो

की ये सब बातें सुनने पर भी कृ×× महाराज ने पुनः कहा, "आप उसे बुलाकर जरा चेतावनी दे दें, तो ठीक है। उसके सम्बन्ध में आपने पहले जो बातें सुनी थीं, वे सब, मालूम पड़ता है, ठीक नहीं है। मैं बहुत अच्छी तरह पता लगाकर ही यह बात आपसे कह रहा हूँ।" तब महापुरुषजी एकदम गम्भीर हो गए और जरा दृढ़ स्वर में बोले, "देखो कृ××, तुम क्या मुझसे भी अधिक अन्तर्दृष्टिसम्पन्न हो? ठाकुर की कृपा से हम लोग एक नजर में सब जान लेते हैं, लोगों का बाहर और भीतर सब कुछ देख लेते हैं। ठाकुर ने अनेक प्रकार से हम लोगों को शिक्षा दी थी। सो सब तुमसे क्या कहूँ? किसी से भी कहने की बात नहीं है। कौन कैसा मनुष्य है, कब होगा, न होगा, सो सब हम अच्छी तरह जानते हैं। केवल कहने से या धमकाने से मनुष्य का दोष नहीं सुधरता। कर सको, तो अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा लोगों के मन की गति बदल दो।" महापुरुषजी की गम्भीरता और नेत्र-मुख की मुद्रा देखकर कृ×× महाराज तुरन्त हाथ जोड़कर उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोले, "महाराज, मैं समझ नहीं सका। मेरे अपराधों पर ध्यान न दें, मुझे क्षमा करें।" तब महापुरुषजी ने कहा, "यदि किसी को सुधारना हो, तो उसके लिए ठाकुर के समीप खूब प्रार्थना करो। ठाकुर से कहो। वे यदि दया करें, तो मनुष्य की मनोगति अद्भुत रीति से परिवर्तित हो सकती है।" कृ×× महाराज के चले जाने पर वे मानो अपने ही मन से कह रहे हैं—"ठाकुर के आश्रय में जो लोग आए हैं, उनमें कोई भी कम नहीं है। सभी माई के लाल हैं—चाहे नया ब्रह्मचारी हो, चाहे वृद्ध साधु। कितने जन्मों के पुण्य के फल से उनके इस पवित्र संघ में आश्रय मिलता है!"

उनको यही उपालम्भ देती हुई रोने लगी। यह भी कैसा रोना था! तब महापुरुषजी ने कहा, "देखो माई, मैं जानता था कि बच्चा चंगा नहीं होगा; तुम तो बच्चे की माँ हो। माँ से कैसे कहता कि बच्चा नहीं रहेगा? इसी लिए लाचार होकर कहा था कि ठाकुर की इच्छा हो, तो बच्चा बच जायगा। रोओ मत, माई। मैं कहता हूँ, ठाकुर कृपा करके तुम्हारा सभी शोक-सन्ताप दूर कर देंगे। तुम आज से ठाकुर को ही अपना बच्चा समझकर उनका चिन्तन करना। वे दया करके तुम्हारे सभी अभावों को पूर्ण कर देंगे, तुम्हारे प्राणों में अपार्थिव शान्ति देंगे।" उनकी आश्वासन-वाणी और आशीर्वाद प्राप्त कर स्त्री भक्त के मन-प्राण शीतल हो गए और बाद में उसके जीवन में अद्भुत परिवर्तन हो गया था।

* * * *

एक दिन बेलुड़ मठ में कृXX महाराज ने महापुरुषजी के पास एक ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में अनेक शिकायतें कीं। वे सब कुछ सुनकर बोले, "देखो कृXX, ठाकुर कहते थे बिन्दु में सिन्धु देखना चाहिए। वे इस बात को केवल मुख से ही कहते थे ऐसा न सोचना, उनकी दृष्टि ही इस प्रकार की थी। यदि उनकी दृष्टि ऐसी न होती, तो क्या हमीं लोग उनके आश्रय में रह पाते? दोष की ओर न देखकर उन्होंने कृपा करके हम लोगों को खींच लिया था और इसी लिए हम लोग उनका आश्रय पा सके। ऐसा कौन है, जिसमें बिलकुल दोष न हो? यहाँ पर सब पूर्ण निर्दोष होने के लिए आए हैं, निर्दोष होकर तो कोई आया नहीं? इस प्रकार का छोटा-मोटा दोष क्रमशः ठाकुर की कृपा से सुधर जायगा। किसी भी प्रकार यदि कोई उनके आश्रय में पड़ा रह सके, तो वे धीरे-धीरे उसका सब ठीक कर देंगे।" महापुरुषजी

की ये सब बातें सुनने पर भी कृ×× महाराज ने पुनः कहा, "आप उसे बुलाकर जरा चेतावनी दे दें, तो ठीक है। उसके सम्बन्ध में आपने पहले जो बातें सुनी थीं, वे सब, मालूम पड़ता है, ठीक नहीं है। मैं बहुत अच्छी तरह पता लगाकर ही यह बात आपसे कह रहा हूँ।" तब महापुरुषजी एकदम गम्भीर हो गए और जरा दृढ़ स्वर में बोले, "देखो कृ××, तुम क्या मुझसे भी अधिक अन्तर्दृष्टिसम्पन्न हो? ठाकुर की कृपा से हम लोग एक नजर में सब जान लेते हैं, लोगों का बाहर और भीतर सब कुछ देख लेते हैं। ठाकुर ने अनेक प्रकार से हम लोगों को शिक्षा दी थी। सो सब तुमसे क्या कहूँ? किसी से भी कहने की बात नहीं है। कौन कैसा मनुष्य है, कब होगा, न होगा, सो सब हम अच्छी तरह जानते हैं। केवल कहने से या धमकाने से मनुष्य का दोष नहीं सुधरता। कर सको, तो अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा लोगों के मन की गति बदल दो।" महापुरुषजी की गम्भीरता और नेत्र-मुख की मुद्रा देखकर कृ×× महाराज तुरन्त हाथ जोड़कर उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोले, "महाराज, मैं समझ नहीं सका। मेरे अपराधों पर ध्यान न दें, मुझे क्षमा करें।" तब महापुरुषजी ने कहा, "यदि किसी को सुधारना हो, तो उसके लिए ठाकुर के समीप खूब प्रार्थना करो। ठाकुर से कहो। वे यदि दया करें, तो मनुष्य की मनोगति अद्भुत रीति से परिवर्तित हो सकती है।" कृ×× महाराज के चले जाने पर वे मानो अपने ही मन से कह रहे हैं—"ठाकुर के आश्रय में जो लोग आए हैं, उनमें कोई भी कम नहीं है। सभी माई के लाल हैं—चाहे नया ब्रह्मचारी हो, चाहे वृद्ध साधु। कितने जन्मों के पुण्य के फल से उनके इस पवित्र संघ में आश्रय मिलता है!"

महापुरुष महाराज की कृपा सभी पर समभाव से होती थी तथा सभी की कल्याण-कामना में वे सर्वदा निरत रहते थे। अनेक समय देखा गया है कि जो अनेक प्रकार की हीनवृत्तियों का अवलम्बन करके श्रीश्रीठाकुर के पवित्र संघ को विच्छिन्न करने में भी नहीं हिचकिचाए, उन लोगों के लिए भी अलग-अलग रूप से उनका नाम ले-लेकर वे ठाकुर के समीप खूब कातर होकर प्रार्थना कर रहे हैं। * * *

सर्वभावमय श्रीश्रीठाकुर के अन्तरंग पार्षदों के जीवन में भी अनेक प्रकार के दिव्य भावों का विकास देखा जाता है। वे लोग भी भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न भाव का आश्रय लेकर भगवान की लीला का आस्वादन किया करते थे। बेलुड़ मठ में रहते समय (१९३२) किसी-किसी दिन सबेरे देखा जाता था कि महापुरुष महाराज अपनी शय्या के ऊपर 'वचनामृत', गीता, दुर्गा-सप्तशती, हितोपदेश, नानी की कहानी, एक खँजड़ी, लाठी, चित्रों की पोथी इत्यादि विविध वस्तुएँ लेकर बैठे हुए हैं — मानो पाँच वर्ष के बालक हों! और इच्छानुसार सभी वस्तुओं को उठा-पटक कर रहे हैं। हुआ तो थोड़ी देर खँजड़ी बजा ली, थोड़ी देर नानी की कहानी पढ़ ली, तो कभी हाथ में लाठी लेकर हँसते-हँसते सेवकों को डंडा दिखा रहे हैं। वे क्यों वैसा करते थे, इसका किंचित् आभास उनकी एक दिन की बातचीत से पाया जाता है। एक सेवक से वार्तालाप के सिलसिले में उन्होंने कहा था, "देखो, मन प्रतिक्षण निर्गुण की ओर छूट जाना चाहता है; इसी लिए इन पाँच तरह की वस्तुओं के सहारे मन को नीची भूमिका में रखने की चेष्टा करता हूँ। माँ जैसे खिलौना देकर बच्चों को भुलाए रखती है, उसी प्रकार मैं

भी मन को पांच तरह की वस्तुओं में भुलाए रखने की चेष्टा किया करता हूँ।"

महापुरुष महाराज के जीवन के अन्तिम तीन-चार वर्षों में उनके समीप प्रतिदिन असंख्य दीक्षार्थी और भक्तों का समागम होता रहता था। वे भी अपने शरीर की तनिक भी चिन्ता न कर हृदय खोलकर सब पर कृपा करते थे। उस समय देखा जाता था, वे प्रतिदिन सवेरे लगभग ९ बजे कपड़े बदलकर गंगा-जल से हाथ-मुँह धो, दीक्षार्थियों पर कृपा करने के लिए प्रस्तुत रहा करते थे। वे किसी को भी विमुख नहीं करते थे। एक दिन बहुत से भक्तों को दीक्षा देकर बाद में कहा था, "बच्चा, ठाकुर कहते थे कि किसी-किसी व्यक्ति को देख-भालकर (दीक्षा) देनी चाहिए; किन्तु अब तो बाँध बिलकुल टूट गया है। वे क्यों इतने लोगों के हृदय में प्रेरणा देकर उन्हें यहाँ ले आ रहे हैं, सो तो वे ही जानें। सब उनकी इच्छा है; मैं और क्या करूँ, तुम्हीं बताओ? इस प्रकार यह वृद्ध शरीर और कितने दिन तक टिक सकेगा, सो वे ही जानें।"

*　　*　　*　　*

बेलुड़ मठ में एक दिन बातचीत के सिलसिले में महापुरुष महाराज ने एक सेवक को लक्ष्य कर कहा था, "देख बच्चा, तुम लोगों के जीवन का आदर्श है ठाकुर। और वे थे त्यागियों के सम्राट्। तुम लोग उन्हीं के आश्रय में आए हो, इस बात को सतत स्मरण रखना। उनके इस पवित्र संघ में तुम लोगों ने स्थान पाया है, यह भी अत्यन्त सौभाग्य की बात है। तुम लोगों पर कितना बड़ा उत्तरदायित्व है, इसे भी विचार करके देखना। हम लोगों का शरीर भला अब और कितने दिन रहेगा?

इसके बाद तुम्हीं लोगों को देखकर लोग सीखेंगे। त्याग ही संन्यास-जीवन का भूषण है। जो जितना त्याग कर सकता है, वह उतना ही भगवान की ओर अग्रसर होता है। सच्चा संन्यासी होना अत्यन्त कठिन है। केवल विरजा होम करके गेरुआ पहन लेने से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। जो तन-मन-वचन से सभी कामनाओं का परित्याग कर देता है, वही सच्चा संन्यासी है। जितना हो सके, उतना त्याग करते जा। देखेगा, समय पर — आवश्यकता होने पर माँ इतना दे देंगी कि तू सँभाल नहीं सकेगा। संचय नहीं करना चाहिए, यहाँ तक कि साधुओं को संचय-बुद्धि भी नहीं रखनी चाहिए। ऐसा रहना चाहिए जैसे पुल — एक ओर से जल आएगा और दूसरी ओर से बह जायगा। किन्तु यदि तू संचय करने लगे, तो फिर और नहीं आएगा; तब मैल जमना शुरू हो जायगा। कभी भी किसी वस्तु की इच्छा मत करना। उन पर सम्पूर्ण निर्भर रहकर उनके आश्रय में पड़ा रह। जब जिसकी आवश्यकता होगी, माँ सब दे देंगी। यही देख न, अब इतनी खाने-पीने की चीजें और वस्त्र आदि आ रहे हैं कि वह सब सँभालना भी कठिन हो गया है। इसी लिए तो सोचता हूँ कि ठाकुर की कैसी इच्छा है! ऐसा भी एक दिन बीता है, जब वराहनगर मठ में रहते समय सब लोग एक ही कपड़ा पहनते थे। और आज कपड़े इतने कि नित्य नए रेशमी कपड़े पहनने पर भी समाप्त नहीं होते! तो भी, बात क्या है जानता है?— उनकी दया से मन उस समय जैसा था, अभी भी वैसा ही है। पहनने के लिए तब वस्त्र नहीं था — परन्तु इसका मन में कोई दुःख न था, कोई अभाव नहीं जान पड़ता था। उन्होंने कृपा करके पूर्ण आनन्द

दिया था। यही देखो न, तुम लोगों ने तो अभी मुझे दो हाथ मोटी गद्दी के ऊपर सुला रखा है; किन्तु मुझे याद आती है काशी की वह बात, जब शीतकाल में केवल सूखी घास बिछाकर उसके ऊपर सो रहता था। उसमें जो आनन्द था, उसकी इसके साथ तुलना नहीं हो सकती!"

* * * *

एक दिन सवेरे दीक्षा की समस्त उपयोगी वस्तुओं को यथाविधि रखकर सेवक प्रतिदिन की भाँति उनके कमरे से बाहर निकल रहे थे। किन्तु उस दिन सेवक को कमरे से बाहर जाते देख उन्होंने कहा, "रहो न, इसमें हर्ज ही क्या है? दीक्षा का मन्त्र कौन नहीं जानता? और वे सब मन्त्र तो पुस्तकों में भी छपे हैं। तो भी, बात क्या है जानते हो बच्चा, यही मन्त्र यदि सिद्ध गुरु के मुख से निकले, तो उससे वह जाग्रत् हो उठता है। अन्यथा वह तो केवल शब्द मात्र है। गुरु अपनी शक्ति के बल से मन्त्र को चैतन्य कर देते हैं और शिष्य की कुण्डलिनी शक्ति को जागरित कर देते हैं। यही असल बात है।"

* * * *

नित्यसिद्ध महापुरुषगण मानो श्रीभगवान के जीवन्त विग्रह हैं। उनका साहचर्य और सेवा जीव को भगवान के समीप ले जाती अवश्य है, किन्तु उनकी सेवा या संगति करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। देव-विग्रह की सेवा-पूजा आदि इसकी तुलना में कहीं अधिक सहज है। साधन-भजन द्वारा चित्त के शुद्ध हुए बिना महापुरुषों की ठीक-ठीक सेवा करना सम्भव नहीं। फिर

ऐकान्तिक निष्ठा चाहिए। साधनचतुष्टय * से सम्पन्न हुए बिना यदि कोई महापुरुषों की सेवा करने के लिए जाय, तो सेवा-अपराध होने की बिलकुल सम्भावना रहती है।

महापुरुषजी के एक सेवक ने अपने को सेवा-अपराध का दोषी समझकर महापुरुष महाराज से एक दिन पूछा था, "महाराज, आपकी सेवा करने में कई बार अनेक त्रुटियाँ हो जाती हैं, जिस पर आप कभी-कभी असन्तोष भी प्रकट करते हैं। आप तो सत्यसंकल्प हैं, आपके श्रीमुख से जो भी निकलेगा, वह अवश्य सत्य होगा; और आपकी असन्तुष्टि से हम लोगों का बड़ा अकल्याण होगा, यह भी निश्चित है। ऐसी अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए, यह बिलकुल नहीं सूझ रहा है।" सेवक की बात सुनकर महापुरुषजी कुछ क्षण तक उसकी ओर देखते हुए चुपचाप बैठे रहे। स्नेह और करुणा से उनके मुख-मण्डल पर एक दिव्य आभा खेलने लगी। बाद में अत्यन्त स्नेह-भरे स्वर में बोले, "देखो बच्चा, ठाकुर आए थे जगत् के कल्याण के लिए। हम लोग भी उन्हीं के साथ आए हैं। जीवों की कल्याण-कामना छोड़कर हममें अन्य कोई कामना नहीं है। स्वप्न में भी कभी किसी की अकल्याण-कामना नहीं की। और ठाकुर भी हम लोगों के द्वारा कभी किसी का कोई प्रकार का अनिष्ट या अकल्याण नहीं होने देंगे। तुम लोग मेरे पास रहते हो, सब समय मेरी सेवा कर रहे हो, तुम लोगों का भला-बुरा

* नित्य और अनित्य वस्तु का 'विवेक'; इहलोक और परलोक के फलभोगों से 'विराग'; शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा— ये 'षट् सम्पत्ति' *तथा* 'मुमुक्षुत्व'— *ये चारों मिलकर* 'साधनचतुष्टय' कहलाते हैं।

समस्त भार ठाकुर ने मुझ पर डाल दिया है। इसलिए तुम लोगों की त्रुटि आदि सब मुझे सुधारनी पड़ रही है। तुम लोगों के कल्याण के लिए ही कई बार डाँटना-डपटना भी पड़ता है; पर यह सब बाहरी है। *अन्दर में है स्नेह, प्रेम और दया।* नहीं तो पास रखता ही क्यों? यह अच्छी तरह समझ रखना कि सब कुछ तुम्हारे कल्याण के लिए ही करता हूँ। तुम लोगों को सुधारने के लिए, तुम लोगों के जीवन की गति जिससे सर्वतोभावेन भगवन्मुखी हो जाय इसलिए, आवश्यकता प्रतीत होने पर कभी-कभी कुछ कठोर व्यवहार भी करता हूँ; और वैसा जो करता हूँ, वह भी अच्छी तरह जान-समझकर ही करता हूँ — क्रोध के वशीभूत होकर नहीं। ठाकुर के समीप तुम लोगों के कल्याण के लिए कितनी प्रार्थना किया करता हूँ, उसका यदि तिल मात्र भी तुम्हें पता होता, तो तुम्हारे मन में ऐसी आशंका कभी न उठती। इसके अतिरिक्त —'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः'—*हम लोगों के क्रोध को भी वर के समान ही समझना।*"

* * * *

संन्यास-रोग से पीड़ित होने के कुछ मास पहले महापुरुष महाराज ने बेलुड़ मठ में प्रतिमा में वासन्ती-पूजा करने की इच्छा प्रकट की थी; किन्तु समयाभाव के कारण वह सम्भव नहीं हो सका। उस सम्बन्ध में एक दिन बातचीत के प्रसंग में एक सेवक ने उनसे कहा था, "महाराज, आपकी जब वासन्ती-पूजा करने की वासना हुई है, तो वह निश्चय पूरी होगी।" सेवक ने यह बात अत्यन्त साधारण तौर पर कही थी; किन्तु "आपकी वासना हुई है" इस वाक्य को सुनते ही वे चौंककर बोले, "एँ, क्या कहा? वासना? मेरी वासना हुई थी? ठाकुर

की कृपा से मुझे कोई भी वासना नहीं है। तिल मात्र भी नहीं।" तब सेवक को अपनी भूल मालूम पड़ी। वह बोला, "नहीं महाराज, आपकी शुभ इच्छा जब हुई है—।" तब वे बोले, "हाँ, हम लोगों की शुभ इच्छा और उनकी कृपा से सब हो सकता है। किन्तु ठाकुर को छोड़कर न मेरा कोई पृथक् अस्तित्व है और न कोई पृथक् इच्छा ही। उनकी जो इच्छा हो, वही होगा।" बात साधारण सी है, किन्तु इससे ही अच्छी तरह समझा जा सकता है कि वे तन-मन-वचन से कितना ठाकुर-गत प्राण थे और ठाकुर के साथ कहाँ तक एक होकर एवं कितना अहंकारशून्य हो इस जगत् में रहते थे।

## बेलुड़ मठ

### शुक्रवार, २ दिसम्बर, १९३२

कुछ महीनों से श्रीश्रीठाकुर के अन्यतम संन्यासी शिष्य स्वामी सुबोधानन्दजी महाराज कठिन क्षयरोग से पीड़ित हो बेलुड़ मठ में रह रहे हैं। उनकी चिकित्सा और सेवा आदि की यथोचित व्यवस्था महापुरुष महाराज ने कर दी है। फिर भी रोग क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। किन्तु महापुरुष महाराज का हृदय मानो किसी भी प्रकार यह विश्वास नहीं करना चाहता कि खोका † महाराज को इतना कठिन रोग हुआ है। यदि कोई इस विषय में पूछता है, तो उत्तर देते हैं, "खोका को ऐसा क्या हुआ है? अब तो धीरे-धीरे अच्छा ही हो रहा है। अपने

† स्वामी सुबोधानन्दजी के गुरुभ्रातागण उन्हें इस प्यार-भरे नाम से पुकारते थे।

काम के लिए ठाकुर जितने दिन रखेंगे, उतने दिन तो ठहरना ही पड़ेगा। यही पक्की बात है। मैं तो यही जानता हूँ, दूसरे लोग जो कुछ कहें। खोका का जैसा है, वैसा ही मेरा भी है। हम लोग, बच्चा, मानव-वैद्य की बात का विश्वास नहीं करते। 'जाको राखे साइयाँ मारि सके नहिं कोय।' वे जब तक रक्षा करेंगे, तब तक खोका का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" किन्तु क्रमशः डाक्टरों के पास से जब उन्होंने खोका महाराज के सम्बन्ध में सुना कि उनकी बीमारी बहुत बढ़ गई है, तो वे अत्यन्त उत्कण्ठित होकर बोले, "ऐं! क्या कहते हैं! नहीं, इतना नहीं बढ़ा। खोका का रोग इतना बढ़ गया है?" इन दो-चार बातों से इतना आवेग प्रकट हुआ था कि उपस्थित व्यक्तियों के सिवाय दूसरे के लिए उसे समझना कठिन है।

आज शुक्रवार है—२ दिसम्बर, १९३२। खोका महाराज प्रातःकाल काफी अच्छे हैं। स्वामी शुद्धानन्द जब उन्हें देखने गए, तो उन्होंने पूछा, "क्या सुधीर, अच्छे हो न? और सब समाचार अच्छे हैं न?"—इत्यादि। यह समाचार पाकर महापुरुषजी का मन प्रफुल्लित है। वे बार-बार कह रहे हैं, "क्यों, खोका तो आज काफी अच्छा है, सुधीर के साथ तो उसने बहुत बातचीत की।" किन्तु जैसे-जैसे दिन चढ़ने लगा, खोका महाराज की शारीरिक अवस्था उतनी ही खराब होने लगी। जान पड़ता है कि प्राणपक्षी इस भग्न देह-पिंजरे में अब और अधिक कैद नहीं रहेगा।

महापुरुषजी को यह समाचार नहीं बतलाया गया। किन्तु वे किसी अज्ञात कारण से आज बहुत अस्थिर हैं। दोपहर में रोज के समान आज विश्राम नहीं किया। अपने कमरे में

थोड़ा-थोड़ा टहल रहे हैं। एक बार खिड़की के पास आकर खड़े हुए। एक संन्यासी मठ के प्रांगण की ओर जा रहे थे, उनको देखकर पूछा, "यह कौन जा रहा है?" एक सेवक ने नाम बता दिया। सुनकर महापुरुषजी बोले, "भरत (स्वामी अभयानन्द) इतनी देर से भोजन करने जा रहा है?" बाद में कहा, "उसका भाव बहुत सुन्दर है। गृहिणी के समान सबको खिलाकर तब स्वयं खाने जाता है। मठ के साधु-भक्तों की सेवा ठीक होने पर ठाकुर भी प्रसन्न रहते हैं। वे कहा करते थे, 'भागवत, भक्त, भगवान — तीनों ही एक हैं।' साधु भक्तों के अन्दर उनका प्रकाश अधिक है।"

अपराह्न — ३ बजकर ५ मिनट पर खोका महाराज महासमाधि-योग से श्रीगुरुपादपद्म में मिल गए। मठ में सर्वत्र एक गम्भीर विषाद की छाया फैल गई। महापुरुषजी यह दुःसंवाद सुनकर सिहर उठे, किन्तु केवल क्षण भर के लिए। शीघ्र ही अपने को सँभालकर सब समाचार लेने लगे। किन्तु अत्यन्त गम्भीर हैं। दूसरे दिन स्वामी विज्ञानानन्द महाराज[1] इलाहाबाद से अकस्मात् आ पहुँचे। उन्हें देखकर महापुरुषजी एकदम जोरों से रो उठे। अन्तर में जो इतना शोकानल ढँका हुआ था, उसे कोई भी समझ नहीं सका था। बहुत देर तक बच्चों के समान फुफक-फुफककर रोते रहे। बाद में थोड़ा शान्त होकर विज्ञानानन्द महाराज से धीरे-धीरे कुशल-प्रश्न आदि पूछने लगे और खोका महाराज के सम्बन्ध में अनेक बातें कहने लगे।

महापुरुषजी कह रहे हैं, "खोका बचपन से ही बराबर

[1] भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्यों में से एक।

त्यागी और कठोर साधक था, और बड़ा सरल था। काशी में जब मैं वंशी दत्त के बाग में रहता था, तो एक दिन खोका वहाँ एक डोली में बैठकर आ पहुँचा। शरीर अस्वस्थ था, किन्तु उस ओर उसका थोड़ा भी ध्यान नहीं। बहुत दिनों बाद मिलने से खूब आनन्द हुआ। वह इतना हँसा कि ज्वर हो आया। मैं खोका को बामुन माँ के पास ले गया। उसके बाद कुछ ठीक होने पर डाक्टर गोविन्द बाबू के पास ले गया। क्रमशः रोग ठीक हो गया। उस समय काशी में हम दोनों एक साथ कुछ दिन रहे। खोका तो खोका (छोटा बालक) ही था। ठाकुर के पास जब जाता था, तो बिलकुल मानो बालक हो। ठाकुर खोका को खूब प्यार करते थे। स्वामीजी भी उससे बड़ा स्नेह करते थे।"

बहुत देर चुप रहने के बाद महापुरुषजी स्वयं ही सस्वर गाने लगे, 'ओ तोर रंग देखे रंगमयी अवाक् होयेछि,' * इत्यादि। बाद में कहा, "यह गाना त्रैलोक्य नाथ सान्याल ने ठाकुर के देह-त्याग के बाद काशीपुर श्मशान घाट में गाया था। उनकी लीला समझना बहुत कठिन है। यही देखो न, खोका तो गौरव के साथ डंके की चोट पर ठाकुर के पास चला गया। उनके बुलाने से ही जाना पड़ेगा। ठाकुर अपनी सन्तान को एक-एक करके खींचे ले रहे हैं, किन्तु मुझे क्यों यहाँ छोड़ रखा है यह तो वे ही जानें। उनकी बलि हूँ — चाहे वे गर्दन से काटें, चाहे नीचे से। उनकी जैसी इच्छा। मुझे तो ऐसा करके रखा है कि किसी के साथ थोड़ा मन खोलकर हँसूँ या दो-चार उन दिनों की बातें करूँ ऐसा भी कोई आदमी नहीं छोड़ा। (थोड़े मान-भरे स्वर में) फिर भी मुझे रहना पड़ेगा।"

* ओ रंगमयी, तेरे रंग देखकर मैं तो अवाक् हो गया हूँ।

सन्ध्या समय खोका महाराज के सेवकों को महापुरुष महाराज के पास लाया गया। उन लोगों ने कल से कुछ खाया-पिया नहीं और बराबर रो रहे हैं। उनकी ओर देखकर महापुरुषजी के नेत्र भी छलछला आए। अपने को अत्यन्त कष्ट से सँभालकर उनको सान्त्वना दे रहे हैं, "क्यों रे, खोका महाराज भला गए ही कहाँ हैं? वे तो ठाकुर के अन्दर ही हैं। हम लोगों की बात का विश्वास करो। केवल शोक करने से क्या होगा? यह सब शोक-मोह अज्ञान से होता है। पूजा-घर में जाकर ध्यान करो, प्रार्थना करो, 'ठाकुर, ज्ञान दो, भक्ति दो।' वे शक्ति देंगे। उनका ध्यान करने से ही यह अविश्वास और भूल सब चले जायँगे। रोने से भला क्या होगा? मुझे रोना नहीं आता ऐसी बात नहीं। मैं भी रोया हूँ, फिर ज्ञान भी आ गया है। ज्ञान तो है ही। ठाकुर ने तो मुझे अभी भी बचा रखा है। मेरी बात मान जाओ बच्चो, कुछ खा लो। तुम लोगों को फिर शोक ही कितना हुआ है? तुम लोग खोका को भला कितने दिनों से जानते हो? और जानते ही कितना हो? मुझे तो एक-एक करके कितना शोक सहना पड़ रहा है, फिर भी चुपचाप सब सहे जा रहा हूँ। क्या करूँ? ठाकुर स्वयं अपनी सब विभूतियाँ अपने अन्दर ही खींचे ले रहे हैं। किसकी हस्ती जो इसे रोक सके? ये सब लोग एक-एक कर चले जा रहे हैं और मेरी छाती मानो छलनी हुई जा रही है। मालूम होता है मानो मेरी एक-एक पसली खिसकती जा रही है।"

कुछ देर चुप रहकर पुनः खोका महाराज के सेवकों को सान्त्वना दे रहे हैं और कुछ खाने के लिए बारम्बार अनुरोध कर रहे हैं। वे लोग कुछ शान्त होकर जब चले गए, तब

ापुरुषजी ने कहा, "ओह ! इन लोगों को बड़ा आघात पहुँच
। संभलने में कुछ देर लगेगी । तो भी, वे शान्तिमयी माँ त
के भीतर ही हैं । समय आने पर वे सभी को शांति देंगी ।

## बेलुड़ मठ

### बुधवार, ७ दिसम्बर, १९३२

अपराह्न काल में महापुरुष महाराज ने एक सेवक
हा, "श्रीमद्भागवत तो ले आओ; जरा अजामिल-उपाख्या
नने की इच्छा हो रही है ।" तदनुसार भागवत लाया गय
ौर पाठ शुरू हुआ ।

राजा परीक्षित शुकदेव से पूछ रहे हैं —'हे महाभाग
नुष्य पाप-कर्म से किस प्रकार अलग हो सकता है ? और अप
िए हुए पाप-कर्मों के फलस्वरूप उसे जो अनेक कठोर यातन
र्ण नरक भोगने पड़ते हैं, उनसे भी वह किस प्रकार छुटकार
ा सकता है ?' इस प्रश्न के उत्तर में शुकदेवजी कह रहे हैं —
अग्नि जिस प्रकार बाँस के बड़े-बड़े झुण्डों को जलाकर रा
कर देती है, उसी प्रकार श्रद्धा-युक्त मनुष्य भी तपस्या, ब्रह्मचर्य
शम, दम, त्याग, सत्य, शौच, यम, नियम इत्यादि की सहायत
से मन और वचन द्वारा किए गए पापसमूह को नष्ट करने
समर्थ होता है ।' किन्तु इस प्रकार का प्रायश्चित्त अत्यन
कठिन है; इसलिए सबसे अन्त में भक्ति के सम्बन्ध में उपदे
देते हुए कहते हैं —

'केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥'

अर्थात् सूर्योदय के होने पर जैसे नीहारराशि दूर हो जाती है, उसी प्रकार वासुदेवपरायण मनुष्य केवल एकान्त भक्ति के द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। इसके दृष्टान्त-स्वरूप बाद में अजामिल का उपाख्यान वर्णित है। अजामिल सदाचारी ब्राह्मण थे; किन्तु बाद में अपनी सती पत्नी को छोड़ उन्होंने एक मदिरा पीनेवाली दासी को पत्नी-रूप में ग्रहण किया; और क्रमशः जुआ, धूर्तता, वंचना और चोरी आदि कलुषित वृत्तियों में आसक्त हो जीवनपर्यन्त अनेक पाप-कर्मों में आसक्त रहे। अजामिल के दस पुत्र थे। उनमें सबसे छोटे का नाम नारायण था। अजामिल उसी को सबसे अधिक चाहते थे। अट्ठासी वर्ष की अवस्था में अजामिल जब मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे, उस समय उग्रमूर्ति यमदूतों को देखकर वे भय से अपने पुत्र को जोरों से 'नारायण, नारायण' कहकर पुकारने लगे। अन्तिम समय में श्रीभगवान के 'नारायण' नाम का उच्चारण करने के फलस्वरूप उसी समय विष्णुदूत दौड़े आए और अजामिल की आत्मा को यमदूतों के हाथ से छुड़ाकर वैकुण्ठ ले गए।

महापुरुष महाराज अत्यन्त तन्मय होकर अजामिल-उपाख्यान सुन रहे थे। सबसे अन्त में पाठ हुआ —

'म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम, किमुत श्रद्धया गृणन्॥'

अर्थात् — हे राजन्, श्रद्धाहीन अजामिल ने तो मुमूर्षु अवस्था में पुत्र के नाम से भगवान के नाम का उच्चारण किया, किन्तु तो भी वह भगवद्धाम में गया; फिर जो श्रद्धा-युक्त होकर भगवान के नाम का कीर्तन करते हैं, वे भगवत्-सान्निध्य प्राप्त करेंगे इसमें सन्देह ही क्या है?

महापुरुषजी अत्यन्त गद्‌गद होकर बोले, "अहा! देखो भगवान के नाम की कैसी अद्‌भुत शक्ति है! वाह, वाह, कैसा चमत्कार, कैसी सुन्दर कथा! इसी लिए तो ठाकुर कहते थे — 'नाम-नामी अभिन्न।' यह बिलकुल पक्की बात है। इस नाम के भीतर ही तो सब कुछ है; नाम ही ब्रह्म है। वे नाम के भीतर निवास करते हैं। जहाँ पर भगवान के नाम का कीर्तन होता है वहाँ भगवान सर्वदा विराजते हैं। —

'नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥'

"भगवान नारद से कहते हैं —'हे नारद, मैं न वैकुण्ठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, किन्तु जहाँ मेरे भक्तगण मेरा नाम-कीर्तन करते हैं, वहीं मैं रहता हूँ।' ठाकुर खूब [illegible]र्तन करने के लिए कहा करते थे। वे कहते थे —'वृक्ष के नीचे खड़े होकर ताली बजाने से जैसे वृक्ष पर बैठे हुए सभी पक्षी उड़ जाते हैं, उसी प्रकार हरि-कीर्तन करने से शरीर के सभी पाप चले जाते हैं।' ठाकुर स्वयं भी ताली बजा-बजाकर खूब नाम-कीर्तन करते थे। जब नाम-गान करने लगते, तब भावस्थ होकर लगातार करते ही जाते थे। उनके सभी कार्य अद्‌भुत थे।"

उस दिन अजामिल-उपाख्यान सुनकर महापुरुषजी इतने आनन्दित हुए कि जो कोई उनके दर्शन के लिए आता था, सभी से भागवत की यह कथा बड़े आनन्दपूर्वक कहते थे।

## बेलुड़ मठ

### नवम्बर-दिसम्बर, १९३२

जाड़ा कुछ-कुछ पड़ने लगा है। सन्ध्या समय है। आरती समाप्त होने के बाद मठ के संन्यासी-ब्रह्मचारीगण सभी ध्यान में रत हैं। एक अनिर्वचनीय शान्ति और गाम्भीर्य सर्वत्र विराजमान है।

महापुरुष महाराज का कमरा भी एकदम निःशब्द है। कमरे में एक हरे रंग का बल्ब जल रहा है। महापुरुषजी पश्चिम की ओर मुँह कर गुगासन में बैठे हुए हैं—ध्यानमग्न। पास में एक सेवक धीरे-धीरे पंखा डुलाकर मच्छर भगा रहे हैं। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। कमरे की निस्तब्धता क्रमशः बढ़ती जा रही है और उनका शान्त मुखमण्डल और भी प्रदीप्त हो उठा है। मठ के साधुओं में से कोई-कोई रोज के समान महापुरुषजी के कमरे में आ रहे हैं और उन्हें ध्यानमग्न देखकर दूर से ही प्रणाम कर वापस जा रहे हैं। धीरे-धीरे नौ बजे, किन्तु उनका ध्यान नहीं टूटा। कुछ समय बाद महापुरुषजी मन्द स्वर में ओंकार ध्वनि करने लगे और बाद में कुछ स्पष्ट स्वर में 'हरि ॐ' 'हरि ॐ' उच्चारण करने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने पूछा, "क्या बजा है?" सेवक ने बड़े संकुचित स्वर से धीमे से कहा, "नौ बज गया है, महाराज।"

महाराज—"ठाकुर के भोग का घंटा बज गया?"

सेवक—"भोग लगे तो काफी देर हो गई। अब भोग उतारने का समय हो गया है।"

महापुरुषजी को बहुत अधिक ध्यान आदि करते देख सेवक

के मन में उथल-पुथल मची हुई है; क्योंकि डाक्टरों का विशेष अनुरोध है कि महापुरुषजी अधिक ध्यान न करें—यह उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर है। इसी लिए आज सेवक ने साहस बटोरकर धीरे से पूछा, "आप लोगों को इतना ध्यान करने की क्या आवश्यकता है? आप लोग तो साधारण दृष्टि से ही ठाकुर के दर्शन कर सकते है, उनके साथ बातचीत कर सकते हैं। फिर आप लोग इतना ध्यान क्यों करते हैं?"

महापुरुषजी स्नेहार्द्र स्वर में धीरे-धीरे बोले, "हाँ, बच्चा, ठीक तो कहते हो। वे दया करके हमें यों ही दर्शन दे देते हैं और प्रयोजन होने पर कृपा करके बातचीत भी करते हैं। ठाकुर, माँ, स्वामीजी आदि सभी बड़ी दया करते हैं। इसमें कोई सन्देह नही। उनके दर्शन के लिए हमको ध्यान नहीं करना पड़ता। मैं उसके लिए ध्यान नहीं करता। बात क्या है जानते हो, जितने लोग यहाँ से दीक्षा ले जाते है, वे सभी तो उतना जप-ध्यान नहीं कर सकते। बहुत से लोग जप-ध्यान करते भी हैं, लेकिन धर्म-पथ में इतनी विघ्न-बाधाएँ है कि वे इस राज्य में अधिक आगे नहीं बढ़ पाते। उन्ही के लिए अलग-अलग रूप से विशेष करके प्रार्थना करनी पड़ती हैं। थोड़ा मन को एकाग्र करके बैठते ही सबके चेहरे मन में आ जाते हैं। तब एक-एक कर उनके लिए प्रार्थना करता हूँ। धर्म-पथ में आगे बढ़ने में जो विघ्न आते हैं, उन्हें दूर कर देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, सांसारिक दुःख-कष्ट भी तो बहुतों को लगे रहते हैं, उसकी भी व्यवस्था करनी पड़ती है। ठाकुर ही अन्तर में प्रेरणा देकर यह सब करा रहे हैं। इस संसार में शोक-सन्ताप, दुःख-कष्ट कितना है, इसकी कोई गणना नही। समस्त जगत् में जिससे शान्ति विराजे, दुःख-कष्ट कम हो

जाय, सब लोग जिससे भगवान की ओर बढ़ सकें, यही हम लोगों की एकमात्र प्रार्थना है। हम लोग अपने लिए तो कुछ नहीं करते, बच्चा।"

महाराज की प्रत्येक बात में हृदय का उल्लास झलका पड़ता है। हृदय का प्रेम-स्रोत मानो फूटा पड़ रहा है। कम्पित कण्ठ से महाराज कहने लगे, "वे ही सब करा रहे हैं। वे प्रेममय प्रभु ही इसके भीतर बैठे अनेक प्रकार से खेल कर रहे हैं। वे जैसा कराते हैं, मैं वैसा ही करता हूँ। जैसा कहलाते हैं, वैसा ही कहता हूँ। मैं तो उनके हाथ का एक साधारण यन्त्र मात्र हूँ—और वह भी टूटा हुआ यन्त्र। सो वे पक्के खिलाड़ी हैं, कानी कौड़ी से भी बाजी मार ले सकते हैं। और ले भी तो रहे हैं! नहीं तो मेरी भला क्या बिसात? न पाण्डित्य है, न भाषण-पटुता, न और कुछ है, न देखने में अच्छा। यही तो बूढ़ा शरीर है, सब समय नीचे भी नहीं उतर पाता। फिर भी वे अपना काम चलाए ले रहे हैं। कितने लोग आते हैं! मैं सबके साथ बात भी नहीं कर पाता—इतने लोग आते हैं। सो वे लोग कहते हैं—'महाराज, आपको बात नहीं करनी पड़ेगी। आपको देखने से ही हृदय की ज्वालाएँ शीतल हो जाती हैं, सब सन्देह मिट जाते हैं।' पर मैं तो कुछ भी नहीं जानता; प्रभु, जय हो, तुम्हारी जय हो! धन्य प्रभु! तुम्हारी महिमा भला कौन समझ सकता है? मैं तो सब देख-सुनकर अवाक् हूँ। इस शरीर के भीतर वे कितने रूप से लीला कर रहे हैं! किससे कहूँ, और समझेगा भी कौन! इसके भीतर-बाहर सर्वत्र वे ही खेल कर रहे हैं। उस दिन गुधीर पूछता था, 'आपके पास से तो इतने लोग दीक्षा लिए जा रहे हैं, आपके मन में क्या सबकी याद रहती है? सबको

आप पहचान सकते हैं ? ' मैंने कहा, 'नहीं बच्चा, मुझे इतना सब याद नहीं रहता। कितने लोगों की दीक्षा हुई, किसका मकान कहाँ है, कौन क्या करता है, इस सबसे मुझे क्या मतलब ? मैं, बच्चा, प्रभु का नाम लेता हूँ, उनका स्मरण-मनन करता हूँ— अन्य कुछ भी नहीं जानता। दीक्षा आदि की बात जो कहते हो, वह भी वे ही प्रेरणा देकर लोगों को यहाँ लाते हैं और (स्वयं को निर्देश कर) इसके भीतर बैठकर सब पर कृपा करते हैं। नहीं तो मेरे लिए भला इतने लोग यहाँ क्यों आएँगे ? तो भी, इस समय वे इस शरीर का ही आश्रय लेकर अपनी लीला कर रहे हैं और मैं मध्यस्थ हो धन्य हुआ जा रहा हूँ। जो यहाँ आते हैं, मैं सबको उन्हीं के श्रीचरणों में सौंप देता हूँ। कहता हूँ— "यह लो ठाकुर, अपनी चीज तुम्हीं लो !" लोग जैसे अनेक प्रकार के फूलों से उनकी चरणपूजा करते हैं, मैं भी उसी तरह अनेक प्रकार के मनुष्यों को उनके श्रीचरणों में सौंप देता हूँ। सो वे सबको ग्रहण कर रहे हैं, यह स्पष्ट देख रहा हूँ। उनके श्रीचरणों में सौंप देता हूँ और उनके ग्रहण कर लेने से ही बस मेरा काम खतम। वे ही सब भार ले लेते हैं। कल्याण और अकल्याण के कर्ता तो वे ही हैं। फिर भी उन लोगों के लिए मेरी हार्दिक शुभेच्छा तो हमेशा ही है। मैं जो उन लोगों के कल्याण की चिन्ता करता हूँ, उनके कल्याण के लिए प्रार्थना करता हूँ— यह भी सब प्रभु की ही इच्छा है। ' "

## बेलुड़ मठ

### नवम्बर-दिसम्बर, १९३२

महापुरुष महाराज का शरीर अस्वस्थ है। रक्त का चाप

बहुत बढ़ गया है। डाक्टरों की चिकित्सा हो रही है। चलना-फिरना, बातचीत आदि सभी में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। आजकल नीचे उतरकर घूम-फिर नहीं सकते। सन्ध्या समय किसी-किसी दिन कमरे के पश्चिम ओर के छोटे बरामदे में थोड़ी सी चहलकदमी करते हैं और किसी दिन गंगाजी की ओर वाले बरामदे में थोड़ा सा टहल लेते हैं। आज सन्ध्या से कुछ पूर्व गंगाजी की ओर वाले बरामदे में आए हैं। गंगाजी के दर्शन कर 'जय माँ गंगे' कहकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले, "ठाकुर गंगा-जल को ब्रह्मवारि कहते थे। गंगाजी की हवा जहाँ तक जाती है, वहाँ तक सब पवित्र हो जाता है।" बाद में माँ भवतारिणी को प्रणाम कर श्रीश्रीठाकुर के समाधि-स्थान को प्रणाम किया। अब एक छड़ी का सहारा लेकर धीरे-धीरे टहल रहे हैं। स्वामीजी के कमरे के सामने आकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। साथ में एक सेवक लगातार रहता है। अब टहलते-टहलते धीरे-धीरे बात कर रहे हैं, "देखो न, शरीर की कैसी अवस्था है! इस समय दो कदम चलते भी कष्ट होता है। पर यही शरीर, ये ही पैर कितने पहाड़ चढ़े-उतरे हैं, कितने देश-देशान्तर घूमे फिरे हैं, कितनी कठोरता सही है। ऐसा बहुत समय बीता है, जब एक कपड़े से अधिक साथ में कुछ भी नहीं रहता था। उसी एक कपड़े का आधा हिस्सा पहनकर और आधे को ओढ़कर रास्ता चलता था। रास्ता चलते-चलते कभी कुएँ पर स्नान कर, कौपीन पहने हुए कपड़ा सुखा लेता था। कितनी ही रातें पेड़ों के नीचे सोकर काट दीं। तब मन में तीव्र वैराग्य था; शारीरिक आराम की बात मन में उठती ही न थी। कठोरता में ही आनन्द आता था। निःसम्बल अवस्था में कितना

घूमा हूँ, किन्तु कभी भी कोई विपत्ति नहीं भोगनी पड़ी। ठाकुर ही सदा साथ रहकर सब विपत्तियों से रक्षा करते रहे हैं, कभी भूखा भी नही रखा। हां, कभी-कभी ऐसा भी दिन गया है कि बिलकुल सामान्य आहार ही प्राप्त हो सका। एक दिन की बात खूब याद है। मैं एक साधु के दर्शन करने बिठूर जा रहा था। दोपहर को रास्ते में एक जगह पेड़ के नीचे विश्राम कर रहा था। आहार कुछ हुआ नही था। पास में कोई बस्ती भी नहीं थी। इसी समय एकाएक पास के बेल पेड़ पर से एक पका बेल पट से गिरा और गिरते ही फट गया। मैंने इधर-उधर ताककर देखा — कहीं कोई न था। तब उस बेल को उठा लाया और उसे खाकर ही भूख मिटाई। बेल खूब बड़ा था।

"उस समय भगवान को पाने के लिए मन में बड़ी व्याकुलता और अशान्ति थी। चलते-चलते भगवान का स्मरण-मनन करता रहता और व्याकुल भाव से प्रार्थना करता। लोगों का साथ बिलकुल अच्छा नही लगता था। जिस रास्ते बहुत से लोग आया-जाया करते थे, उस रास्ते से मैं प्रायः नही जाता था। सन्ध्या होने पर कहीं ठहरने का स्थान खोजकर अपने भाव में ही रात काट देता था। रात्रि ही साधन-भजन का सबसे अच्छा समय है। बाह्य कोलाहल कुछ भी नहीं रहता। मन आप ही शान्त हो जाता है। इस प्रकार घूमते हुए अनेक दिन बिताए हैं। इस तरह निस्सहाय अवस्था में कुछ दिन बिताने से भगवान पर पूर्ण निर्भरता आ जाती है। सुख में, दुःख में वे ही एकमात्र रक्षक हैं, यह भाव खूब पक्का हो जाता है।"

अब महापुरुषजी कुर्सी पर आकर बैठ गए। बात वही

चल रही है —"इस समय तो ठाकुर ने दया करके अपनी सेवा के लिए यहीं रखा है। अब और कहीं जाने की इच्छा नहीं होती। एक ओर गुरु और दूसरी ओर गंगाजी, और बीच में मैं बड़े मजे में हूँ। यह स्थान तो वैकुण्ठ है! स्वयं जगन्नाथ यहां जगत् के कल्याण के लिए रहते हैं। फिर, स्वामीजी के समान सिद्ध पुरुष यहां रहते थे। कितना भाव, कितना महाभाव यहां हुआ है। हम लोगों के आत्माराम ठाकुर यहां विद्यमान हैं। और ठाकुर के सब पार्षदगण भी इस स्थान पर अब भी सूक्ष्म देह में वर्तमान हैं, उनको देखा भी जा सकता है। कहीं पर किसी एक मनुष्य ने सिद्धि लाभ की, बस वह एक तीर्थ बन गया। पर यह तो महातीर्थ है! इस स्थान का प्रत्येक रजकण भी कितना पवित्र है — ठाकुर, स्वामीजी ये सब क्या थे, यह लोगों को समझने और जानने में अभी भी बहुत देर है। जगत् के कल्याण के लिए इतनी बड़ी आध्यात्मिक शक्ति हजार-हजार वर्षों में भी आविर्भूत नहीं हुई। बुद्धदेव के आने के सैंकड़ों वर्ष बाद लोग उन्हें कुछ-कुछ समझ सके थे, तब उनका वह उदार भाव जगत् में बिखरा था। अब देखो न, बुद्धदेव का एक दांत कहीं ले गए, उसी को लेकर कितना सब आयोजन हुआ! कितना बड़ा दन्तमन्दिर उसकी याद में बनाया गया! और यहां ठाकुर, मां, स्वामीजी सभी की भस्म-अस्थियां हैं। यह सब सोचने से ही रोमांच होने लगता है। इसी बेलुड़ मठ की धूलि में लोट-पोट होने के लिए देश-देशान्तर से कितने लोग दौड़े आएंगे! और उसकी सूचना भी प्राप्त हो रही है। ठाकुर का देह-त्याग हुए आज पचास वर्ष भी तो नहीं हुए। पर देखो न, इसी बीच में उनको लेकर सारी दुनिया में कैसी हलचल

मच गई हैं। हम लोग धन्य हैं, जो यह सब अपनी आँखों देख रहे है। तुम लोग और भी कितना देखोगे।

"ठाकुर का कार्य-क्षेत्र था भाव-राज्य में, आध्यात्मिक राज्य में। उनका आदर्श जीवन समग्र जगत् में शीघ्र ही धर्म-भाव में एक आमूल परिवर्तन ला देगा। उसके लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। योगीन महाराज एक बात कहा करते थे, 'अनेक धर्ममत चिरकाल से है, ढेरों शास्त्र-ग्रन्थ भी हैं, तीर्थस्थान भी असंख्य हैं और सभी देशों मे हैं। ऐसा होने पर भी धर्म की ग्लानि क्यों होती है, जानते हो? इसलिए कि समय के प्रभाव से इन सबका आदर्श नष्ट हो जाता है। इसी लिए श्रीभगवान अवतीर्ण होते है—धर्म का गूढ़ रहस्य समझाने के लिए, आदर्श दिखाने के लिए।' ठाकुर इस बार जगत् के समस्त धर्ममतों का जीवन्त आदर्श बनकर आए हैं। इसी लिए उन्होंने भिन्न-भिन्न मतों की साधना की थी और सबके द्वारा सिद्धि-लाभ किया था। ठाकुर का जीवन ही प्रत्येक धर्म के आदर्श का मूर्त विग्रह है। अब देखोगे, उनके अलौकिक जीवन से प्रत्येक धर्मावलम्बी नया आलोक, नई आशा और नई प्रेरणा पाएगा और उनके जीवन-आदर्श में अपना धर्म-जीवन ढाल लेगा।"

सन्ध्या हो गई। महापुरुष महाराज धीरे-धीरे अपने कमरे में आए और बिस्तर पर पश्चिम की ओर मुँह करके हाथ जोड़कर बैठ गए। सामने की दीवाल पर ठाकुर का एक बृहत् छाया-चित्र टँगा है। कमरे मे और भी अनेक देवी-देवताओं के चित्र हैं। महापुरुषजी ने ठाकुर एवं अन्यान्य सब देवी-देवताओं को प्रणाम किया और मौन बैठे हैं। आरती प्रारम्भ हो गई।

साधु-भक्तगण मधुर कण्ठ से एक स्वर में आरती के भजन गा रहे हैं। सबके बाद देवी-प्रणाम गाया गया। महापुरुषजी भी स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगे—'सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके...'। कुछ समय बाद चारों ओर बिलकुल नीरव हो गया। महापुरुषजी भी उसी भाव में बैठे हुए हैं—निमीलितनेत्र, ध्यानस्थ।

## बेलुड़ मठ

### बुधवार, २८ सितम्बर, १९३२

आज सारे दिन भक्त और दर्शकों की भीड़ बराबर लगी हुई है। ढाका के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने अपने परलोकगत पुत्र के सन्दूक में महापुरुष महाराज का फोटो और जपमाला देखी। इसलिए वे अपने भीतर से प्रेरित हो अपराह्न काल में महापुरुषजी के दर्शन करने आए हैं। उन्होंने पुत्र के निधन की सब घटना महापुरुषजी को सुनाई और अत्यन्त शोक प्रकट करने लगे। महापुरुषजी धीर भाव से सब सुनने के बाद बोले, "आपका पुत्र भगवद्भक्त था; उसकी आत्मा को अवश्य सद्गति मिली है। वह अत्यन्त भाग्यशाली था; उसके लिए आप शोक न करें। वह बड़े शुभ संस्कार लेकर जनमा था; इसी लिए अल्प अवस्था में ही भगवान में उसकी मति हो गई थी। और वह अपने जीवन के उद्देश्य का लाभ कर स्वधाम में चला गया। इसके अतिरिक्त, 'जन्म-मृत्यु' पर मनुष्य का तो कोई बस है नहीं—यह सब ईश्वर की इच्छा के अधीन है। वे ही जानते हैं किसे कितने दिन इस संसार में रखना है। सभी देहों का नाश होता है; इस

नियम का व्यतिक्रम कहीं भी नहीं होता। पुत्र गया है; एक दिन आपको भी चले जाना होगा। स्त्री, पुत्र, कन्या, जिनको आप 'अपना' मान रहे हैं, सभी को जाना होगा। कोई चिरकाल तक नहीं रहेगा। गीता में श्रीभगवान कहते हैं — 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।' † जो व्यक्ति जन्म लेता है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है; इसी लिए उस अवश्यम्भावी बात के लिए शोक करने को मना करते हैं। मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है, बताइए भला? भगवान का लाभ करना ही जीवन का उद्देश्य है — फिर पुत्र, परिवार इत्यादि रहे या जाय। प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्म का उत्तरदायी है। पुत्र की सुकृति थी; उसे सद्गति मिल गई है। अब आप भी वही करें, जिससे आप स्वयं सद्गति प्राप्त कर सकें। आप अपनी स्त्री से भी यही कहें। केवल कहने से क्या होगा — करना होगा। खूब हठ पकड़कर भगवत्प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना होगा। लग जाइए आज से ही — पल-पल तो जीवन ढलता जा रहा है। किसकी कब मृत्यु होगी, सो कोई नहीं जानता; अतएव एक दिन भी व्यर्थ न जाने दें। जो सोचते हैं कि वह सब बाद में कर लेंगे, उनसे कभी भी नहीं होगा। वे इस जन्म-मृत्यु के प्रवाह में अनन्त काल तक डूबते-उतराते रहेंगे।"

बाद में बड़े भाव के साथ गाने लगे —

'भेबे देखो मन केओ कारो नय, मिछे भ्रमो भूमण्डले।
भूलो ना दक्षिणा काली बद्ध होये मायाजाले॥
जार जन्य मरो भेबे, से कि तोमार संगे जावे।

† गीता — २।२७

सेइ प्रेयसी दिबे छड़ा अमंगल होबे बोले॥
दिन दुइ तिनेर जन्य भवे कर्ता बोले सबाइ माने।
सेइ कर्तारे देबे फेले कालाकालेर कर्ता एले॥'*

"संसार में जिनको आप अपना समझ रहे हैं, वे कोई भी आपके अपने नहीं हैं। एकमात्र अपने हैं श्रीभगवान। वे जन्म-मरण के साथी हैं, जीव की अन्तरात्मा हैं। उनके साथ जो सम्बन्ध है, वह चिरकाल का है।"

## बेलुड़ मठ

महापुरुषों की दया चन्द्रालोक के समान अपने स्निग्ध माधुर्य से जगत् को प्लावित कर देती है। उसमें पात्र-अपात्र का भेद नहीं रहता, जाति-वर्ण का विचार नहीं रहता। धनी-निर्धन, ब्राह्मण-शूद्र, धार्मिक-अधार्मिक सभी को तृप्त करती हुई उनके हृदय की करुणा-जाह्नवी बहने लगती है।

एक दिन प्रातःकाल महापुरुष महाराज कुछ विश्राम के बाद अपनी खाट पर बैठे हुए हैं — अत्यन्त गम्भीर अन्तर्मुख भाव है। एकाएक पास के एक सेवक से बोले, "अरे, देख तो,

* सोचकर देख ले मन, कोई किसी का नहीं है। तू इस संसार में वृथा ही मारा-मारा फिरता है। मायाजाल में फँसकर दक्षिणा-काली को भूल न जाना। जिसके लिए तू इतना सोचता है, क्या वह तेरे संग भी जायगा ? तेरी वही प्रेयसी, जब तू मर जायगा तब तेरी लाश से अमंगल की आशंका से घर में पानी का छिड़काव करेगी! यह सोचना कि लोग मुझे मालिक कहते हैं, सिर्फ दो ही दिन के लिए है। जब कालाकाल के मालिक आ जाते हैं, तब पहले के वही मालिक श्मशान घाट में फेंक दिए जाते हैं।

कोई दीक्षा लेने आया है क्या ?" सेवक ने कमरे से बाहर आकर इधर-उधर देखा, और बाद में नीचे उतरकर गए। वहाँ उन्होंने दीक्षा की इच्छुक एक स्त्री को देखा। उन्होंने उसका परिचय पूछा। परिचय सुनकर तो वे सन्न रह गए। स्त्री युवती थी, किसी गाँव से एक पुरुष के साथ आई थी। वह स्वयं ही अपने कुत्सित जीवन का परिचय देते हुए बोली कि यद्यपि उसका जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ है, फिर भी कुसंग में पड़कर वह पथ-भ्रष्ट हो गई है और एक नीच जाति के व्यक्ति के साथ रहती है, और अभी उसी व्यक्ति के साथ आई है। फिर अत्यन्त करुण स्वर से कहने लगी, "मुझे क्या एक बार भी उनके दर्शन नहीं मिलेंगे ? वे क्या मुझ जैसे अधम पर दया नहीं करेंगे ?" सेवक बड़े भारी मन से महापुरुषजी के कमरे में लौट आए। उन्हें देखते ही महापुरुषजी ने बड़ी व्यग्रता के साथ पूछा, "क्यों रे, कोई है ?" सेवक बड़े अनमने-से होकर बोले, "महाराज, हाँ, एक स्त्री दीक्षा लेने के लिए आई तो है, किन्तु ——।" मुख की पूरी बात बाहर निकल भी न पाई थी कि महापुरुषजी बोल उठे, "उससे क्या हुआ ? उसे गंगा-स्नान कर ठाकुर के दर्शन करके आने को कह। हम लोगों के ठाकुर तो पतितपावन हैं। वे तो पतितों के उद्धारार्थ ही आए थे। वे यदि इन लोगों को न उठा लें, तो इनके उद्धार का उपाय ही क्या रहा ? फिर उनका पतितपावन नाम भी कैसा ?" वे मानो अपने हृदय का अनन्त भंडार खोलकर जीव पर कृपा करने के लिए तैयार बैठे हैं। इसके बाद वह स्त्री स्नान आदि करके दीक्षा के लिए आई। महापुरुषजी उससे जो बातचीत करने लगे, उससे ऐसा लगा कि वे उसका सब कुछ जान गए हैं। वे बोले, "डर

सेइ प्रेयसी दिबे छड़ा अमंगल होबे बोले॥
दिन दुइ जिनेर जन्य मने कर्ता बोले गबाइ माने।
सेइ कर्तारे देबे फेले कालाकालेर कर्ता एले॥'*

"संसार में जिनको आप अपना समझ रहे हैं, वे कोई भी आपके अपने नहीं हैं। एकमात्र अपने हैं श्रीभगवान। वे जन्म-मरण के साथी हैं, जीव की अन्तरात्मा हैं। उनके साथ जो सम्बन्ध है, वह चिरकाल का है।"

## बेलुड़ मठ

महापुरुषों की दया चन्द्रालोक के समान अपने स्निग्ध माधुर्य से जगत् को प्लावित कर देती है। उसमें पात्र-अपात्र का भेद नहीं रहता, जाति-वर्ण का विचार नहीं रहता। धनी-निर्धन, ब्राह्मण-शूद्र, धार्मिक-अधार्मिक सभी को तृप्त करती हुई उनके हृदय की करुणा-जाह्नवी बहने लगती है।

एक दिन प्रातःकाल महापुरुष महाराज कुछ विश्राम के बाद अपनी खाट पर बैठे हुए हैं — अत्यन्त गम्भीर अन्तर्मुख भाव है। एकाएक पास के एक सेवक से बोले, "अरे, देख तो,

* सोचकर देख रे मन, कोई किसी का नहीं है। तू इस संसार में वृथा ही मारा-मारा फिरता है। मायाजाल में फँसकर दक्षिणा-काली को भूल न जाना। जिसके लिए तू इतना सोचता है, क्या वह तेरे संग भी जायगा? तेरी वही प्रेयसी, जब तू मर जायगा तब तेरी लाश से अमंगल की आशंका से घर में पानी का छिड़काव करेगी! यह सोचना कि लोग मुझे मालिक कहते हैं, सिर्फ दो ही दिन के लिए है। जब कालाकाल के मालिक आ जाते हैं, तब पहले के वही मालिक श्मशान घाट में फेंक दिए जाते हैं।

कोई दीक्षा लेने आया है क्या ?" सेवक ने कमरे से बाहर आकर इधर-उधर देखा, और बाद में नीचे उतरकर गए। वहाँ उन्होंने दीक्षा की इच्छुक एक स्त्री को देखा। उन्होंने उसका परिचय पूछा। परिचय सुनकर तो वे सन्न रह गए। स्त्री युवती थी, किसी गाँव से एक पुरुष के साथ आई थी। वह स्वयं ही अपने कुत्सित जीवन का परिचय देते हुए बोली कि यद्यपि उसका जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ है, फिर भी कुसंग मे पड़कर वह पथ-भ्रष्ट हो गई है और एक नीच जाति के व्यक्ति के साथ रहती है, और अभी उसी व्यक्ति के साथ आई है। फिर अत्यन्त करुण स्वर से कहने लगी, "मुझे क्या एक बार भी उनके दर्शन नहीं मिलेंगे ? वे क्या मुझ जैसे अधम पर दया नहीं करेंगे ?" सेवक बड़े भारी मन से महापुरुषजी के कमरे में लौट आए। उन्हें देखते ही महापुरुषजी ने बड़ी व्यग्रता के साथ पूछा, "क्यों रे, कोई है ?" सेवक बड़े अनमने-से होकर बोले, "महाराज, हाँ, एक स्त्री दीक्षा लेने के लिए आई तो है, किन्तु —।" मुख की पूरी बात बाहर निकल भी न पाई थी कि महापुरुषजी बोल उठे, "उससे क्या हुआ ? उसे गंगा-स्नान कर ठाकुर के दर्शन करके आने को कह। हम लोगों के ठाकुर तो पतितपावन हैं। वे तो पतितों के उद्धारार्थ ही आए थे। वे यदि इन लोगों को न उठा ले, तो इनके उद्धार का उपाय ही क्या रहा ? फिर उनका पतितपावन नाम भी कैसा ?" वे मानो अपने हृदय का अनन्त भंडार खोलकर जीव पर कृपा करने के लिए तैयार बैठे हैं। इसके बाद वह स्त्री स्नान आदि करके दीक्षा के लिए आई। महापुरुषजी उससे जो बातचीत करने लगे, उससे ऐसा लगा कि वे उसका सब कुछ जान गए हैं। वे बोले, "डर

क्या है, माई ? तुमने जब पतितपावन श्रीरामकृष्ण का आश्र
लिया है, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा । कहो, 'इस जन्म
और गत जन्मों में जो पाप मैंने किए हैं, सब यहाँ दे दिए । अ
और पाप नहीं करूँगी ।' " यथाविधि दीक्षा होने के बाद ज
वह स्त्री बाहर आई, तो ऐसा मालूम पड़ा मानो वह एक नवी
व्यक्ति हो गई !

उस दिन महापुरुष महाराज ने बाद में कहा था, "इ
शरीर में इतनी बीमारी, इतना कष्ट-भोग क्यों है, जानता है
इन सब लोगों के पाप का भोग इस शरीर में हुआ जा रहा है
अन्यथा इस शरीर में इतना दुःख-भोग क्यों होता ?"

## बेलुड़ मठ

सन्ध्या समय ध्यान के पश्चात् महापुरुषजी के कमरे में मठ
के कुछ साधुगण उपस्थित हैं । महापुरुषजी थोड़ी-थोड़ी बातें
कर रहे हैं । प्रत्येक बात में ध्यान का आनन्द बिखरा पड़ रहा
है । और कैसा मधुर हास्य ! अपने जीवन का प्रसंग उठने पर
महापुरुषजी ने कहा, "मुझे बचपन से ही निराकार भाव अच्छा
लगता था । उसी भाव में ध्यान भी करता था । जब से ठाकुर
के संस्पर्श में आया, तब से साकार भाव में विश्वास हो गया,
और उसमें आनन्द भी मिलने लगा ।"

एक दूसरे दिन पूजा की बात चलने पर महापुरुषजी ने
"देखो, हम लोग जो पूजा करते थे, वह केवल भाव
.। थी । उसमें कोई आडम्बर नहीं रहता था । पूजा
. पर बैठते, तो सोचते — ठाकुर दक्षिणेश्वर में जिस प्रकार

अपनी खाट पर बैठे रहते थे, उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से यहाँ भी हैं। और उसी प्रकार उनके दोनों चरण धो-पोंछकर, उन्हें स्नान आदि कराकर वस्त्र आदि पहना देते। उसके बाद फूल-चन्दन से सजाकर फल, मूल, मिठाई आदि का भोग लगाते। बाद में फिर अन्न-व्यंजन आदि निवेदित कर देते। उनका भोजन समाप्त होने पर ताम्बूल आदि देते। ताम्बूल आदि के पश्चात् उनको शयन कराकर उनकी चरण-सेवा और पंखा आदि कर देते और उनके सो जाने पर धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर अपने कमरे में आकर विश्राम करते। ये सब कार्य, वे जीवन्त और प्रत्यक्ष हैं इस बुद्धि से, उनके प्रति प्रगाढ़ स्नेह के साथ सम्पन्न हुआ करते थे। पूजा में मन्त्र-तन्त्र, विधि-नियम कुछ रहता अवश्य था, पर उस सबकी ओर हम लोगों की वैसी कोई प्रवृत्ति नहीं थी। पूजा में तिल मात्र भी आडम्बर नहीं था। वे तो हम लोगों के हृदय-देवता हैं, वे चाहते हैं हार्दिक प्रेम और आत्म-निवेदन। किन्तु आजकल समय के साथ-साथ वाह्य आडम्बर ही बढ़ता जा रहा है और फलस्वरूप भाव-भक्ति की गम्भीरता क्रमशः कम होती जा रही है।

"स्वामीजी की पूजा भी वैसी ही थी। वे तो पूजा-घर में जाकर, आसन पर बैठते ही पहले ध्यान करते — बड़ा गम्भीर ध्यान। एक या डेढ़ घटे तक खूब ध्यान करके फिर पूजा आदि प्रारम्भ करते। ध्यान के द्वारा ही सब हो जाता था। उसके बाद ठाकुर को स्नान कराते। फिर समस्त फूलों में चन्दन लगाकर दोनों हाथों से बारम्बार उनके श्रीचरणों में अंजलि देते। यह एक देखने योग्य पूजा थी। उसके बाद साष्टांग प्रणाम कर

उठ आते। भोग आदि कोई और जाकर निवेदित करता उनकी पूजा में ध्यान ही प्रधान था।"

बाद में बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा, "हम लो तो संन्यासी हैं। हम लोगों को देवालय, पूजा इत्यादि क उतनी आवश्यकता नहीं है। यह सब बाह्य अनुष्ठान न कि बिना भी हम लोगों का काम चल सकता है। किन्तु इस सबक आवश्यकता अधिकतर इसलिए है कि पृथ्वी के सब स्थानों से सभी श्रेणियों के नर-नारी — आबालवृद्धवनिता — इस महा केन्द्र में आकृष्ट होकर आएँगे और शनैः-शनैः पवित्र हो जायेंगे तथा श्रीश्रीठाकुर के इस महान् उदार समन्वय-भाव को ग्रहण कर धन्य हो जायँगे।"

एक दिन प्रातःकाल ध्यान आदि के पश्चात् मठ के अनेक साधु महापुरुषजी के कमरे में खड़े हुए हैं। अनेक प्रकार की बातचीत हो रही है। स्वामी यतीश्वरानन्द ने पूछा, "महाराज, समुद्र को क्या ईश्वर के प्रतीक-रूप में लिया जा सकता है?" महापुरुषजी ने उत्तर दिया, "समुद्र क्यों? समुद्र के तो तट आदि हैं और वह सर्वत्र है भी नहीं। आकाश ही उनका प्रतीक है। आकाश असीम है और प्रत्येक अणु-परमाणु में भी वर्तमान है। विश्व का भीतर-बाहर सब आकाश द्वारा ओत-प्रोत है। बाहर विश्व में, जिधर देखता हूँ, आकाश ही दिखाई देता है। दूर — अति दूर, अनन्त में सूर्य से भी हजारों गुने बड़े सैकड़ों सौरजगत् विद्यमान हैं। असंख्य नक्षत्र नभोदधि में क्षुद्र बुद्बुद् की नाईं उठते हैं, रहते हैं और फिर उसी में विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार ईश्वर में भी अनन्त विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय हो रहा है। वे ही यह अनन्त नाम-रूप प्रकाशित कर

प्रत्येक के भीतर एक अद्वय अखण्ड रूप से अनुप्रविष्ट हैं। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' †—'वे विश्व को प्रकाशित कर उसी में अनुप्रविष्ट हो गए।'"

एक दिन महापुरुष महाराज को एकान्त में पाकर एक संन्यासी ने व्याकुल भाव से कहा, "महाराज, दिन-पर-दिन शरीर तो असमर्थ होता जा रहा है। अब तो पहले के समान साधन-भजन नहीं कर पाता, इसी लिए डर लगता है कि क्या होगा।"

महाराज —"रोओ, खूब रोओ। उन्हें क्या साधन-भजन के द्वारा पाया जा सकता है? मनुष्य की शक्ति ही भला कितनी है? वह ऐसा क्या कर सकता है, जिससे वह उनकी कृपा का अधिकारी हो जाय? कुछ भी नहीं। उनके ऊपर समस्त भार डालकर निश्चिन्त हो जाओ। उनके शरणागत होओ, वे निश्चय ही कृपा करके अपने श्रीचरणों में स्थान देंगे। उनकी कृपा बिना उन्हें पाने का कोई उपाय नहीं।"

संन्यासी —"सो तो, महाराज, ठीक बात है, किन्तु अहंकार, अभिमान जो पिण्ड नहीं छोड़ते, क्या करूँ? कितना ही मन को क्यों न समझाऊँ, वह किसी तरह समझना ही नहीं चाहता। केवल यही मन में होता है कि हम लोग चेष्टा करके कुछ तो अवश्य कर सकते हैं। तथापि यह बौने द्वारा चाँद पकड़ने के समान असम्भव ही है। आप आशीर्वाद दीजिए कि अहंकार, अभिमान नष्ट हो जायँ और उनके श्रीचरणों में शरणागति प्राप्त कर सकूँ।"

महाराज —"सो होगा, बच्चा। मैं कहता हूँ, श्रीश्रीठाकुर

† तैत्तिरीय उपनिषद् — २।६।१

की कृपा से उन पर सम्पूर्णतया निर्भर रहकर कृतकृत्य हो सकोगे। तुम्हारा मानव-जीवन धन्य हो जायगा।"

मठ में श्रीदुर्गा-पूजा हो रही है। महानवमी की रात है। गत वर्षों में इस रात्रि में कितना भजन-कीर्तन होता था—सारा मठ मुखरित हो उठता था। किन्तु इस वर्ष महापुरुषजी के शरीर की अवस्था संकटापन्न होने के कारण आज मठ-भूमि नीरव-सी है। कुछ रात बीतने पर महापुरुषजी ने भजन आदि का शब्द न पाकर मठ के साधुओं को बुलवाया और उन लोगों से कहा, "आज महानवमी की रात है, बड़े आनन्द का समय है। भजन आदि कुछ न करके तुम लोग चुपचाप क्यों हो? क्या बात है?"

एक साधु—"महाराज, आपके शरीर की ऐसी दशा है। हम लोग फिर कैसे भजन गाएँ। कोलाहल से आपके हृदय की हालत और भी खराब हो जायगी। इसी लिए भजन आदि कुछ नहीं कर रहे हैं।"

महाराज—"क्यों, उससे क्या हुआ? मैं तो काफी अच्छा हूँ। भजन सुनने से मैं बड़ा अच्छा रहता हूँ। इस देह को रोग है, इस कारण तुम लोग मेरी आनन्दमयी माँ को भजन नहीं सुनाओगे, आनन्द नहीं मनाओगे? मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। जाओ, तुम लोग भजन गाओ।"

## बेलुड़ मठ

दोपहर का समय है। महापुरुष महाराज अपने कमरे में . कर रहे हैं। एक संन्यासी शिष्य पास खड़े होकर

चुपचाप पंखा झल रहे हैं। कमरे में दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है। एकाएक महापुरुषजी बोले, "देखो, संसारी लोग सोचते हैं कि ब्रह्मज्ञान एक असम्भव बात है। किन्तु ब्रह्मज्ञानी सोचते हैं कि मनुष्य के लिए संसार में आसक्त होकर भगवान को भूले रहना एक असम्भव बात है।" शान्त, गम्भीर, करुणासिक्त वह बात इतनी मर्मस्पर्शी थी कि शिष्य के मानस-पटल पर वह हमेशा के लिए अंकित हो गई।

एक दूसरे दिन मठ के एक संन्यासी से महापुरुषजी ने कहा था, "देखो ×××, शास्त्र क्या पढ़ते हो? हम लोगों का जीवन पढ़ सकते हो? हम लोगों का जीवन ही उपनिषद् है। इसमें ही शास्त्रों का मर्म देख सकोगे।" उस कमरे में उपस्थित साधुओं ने यह बात अत्यन्त स्वाभाविक रूप से ग्रहण की थी। सचमुच, महापुरुषों का जीवन-वेद यदि कोई पढ़ सके, तो शास्त्र-मर्म स्वयं ही बोधगम्य हो जाता है।

एक समय आचार्य स्वामी विवेकानन्द-प्रणीत मठ की नियमावली लेकर पूर्वोक्त शिष्य स्वामी सारदानन्दजी के पास गए। वे यह जानना चाहते थे कि इस पुस्तक में दी हुई बातों के सम्बन्ध में स्वामीजी का अपना स्वयं का मत कितना है, और स्वामी सारदानन्दजी का इनमें कोई मतभेद है या नहीं। एक-एक कर नियमावली पढ़ी जाने लगी और स्वामी सारदानन्दजी ने यह विशद रूप से समझा दिया कि प्रत्येक नियम की भित्ति श्रीरामकृष्ण की अभिज्ञता एवं वाणी पर प्रतिष्ठित है। अन्त में उन्होंने कहा कि उनका अपना इस विषय में कोई स्वतन्त्र मत नहीं है, और शिष्य को आदेश दिया कि वह अपना यह प्रश्न लेकर महापुरुष महाराज के समीप जाय। शिष्य तब महापुरुषजी के

पास गए, और ज्योंही अपना प्रश्न दुहराया, त्योंही महापुरुषजी मानो एक बात में स्वामी सारदानन्दजी की मीमांसा की अनुवृत्ति करते हुए बोले, "देखो, ठाकुर हैं वेद, और स्वामीजी हैं उसके भाष्य; इन दोनों से भिन्न हमारी कोई बात ही नहीं।"

श्रीरामकृष्ण मिशन के जिस केन्द्र में उपरोक्त शिष्य कार्य करते थे, वहाँ से अन्यत्र जाने की उनकी कई बार इच्छा हुई थी। परन्तु प्रत्येक बार नाना प्रकार से आश्वासन देकर एवं प्रोत्साहित कर महापुरुष महाराज ने उन्हें ऐसा करने से रोक रखा था। अन्तिम बार जब शिष्य ने उनसे अनुमति की प्रार्थना की, तो उन्होंने सकरुण स्वर से शिष्य की हृत्तन्त्री को छूते हुए कहा, "देखो, उस केन्द्र द्वारा बहुत से लोगों का कल्याण होगा। और यदि वहाँ रहने से तुम्हारी कोई क्षति होती भी हो, तो वह कोई विशेष नहीं है; शायद तुम्हारे अभीष्ट-लाभ में कुछ देरी हो सकती है। परन्तु यह भी निश्चय है कि देरी होगी नही। और यदि हो भी, तो तुम क्या इतने लोगों के कल्याण के लिए इतना भी sacrifice (त्याग) न कर सकोगे?"

* * * *

१९१६ ई० मे जब महापुरुष महाराज काशी में थे, उस समय एक दिन बातचीत के सिलसिले में आश्रम के साधुओं से उन्होंने कहा था, "साधन-भजन लेकर किसी को अपनी बड़ाई नहीं करनी चाहिए। यदि तुम्हें निर्विकल्प समाधि भी हो जाय, तो उससे क्या? तुम्हारा जो यथार्थ स्वरूप है, वही तुम फिर से पा लोगे। इसमें अहंकार करने की क्या बात है?" कैसी अद्भुत निरभिमानिता और आध्यात्मिक शक्ति का परिचय इन दो-चार सरल बातों में भरा है!

बेलुड़ मठ मे रहते समय एक दिन महापुरुषजी ने कहा, "हम लोग उस समय स्वामीजी के साथ अल्मोड़ा में थे। एक भक्त ने हमसे पूछा कि हम लोग thought-reading ( मन की बात बता देना ) जानते हैं या नही। तब स्वामीजी ने मुझे एक ओर बुलाकर किस प्रकार वह किया जाता है सिखा दिया। कहा, 'किसी के मन की बात जानने के लिए पहले अपने मन को बिलकुल खाली कर दो। उसके बाद जो विचार तुम्हारे मन में सबसे पहले उठे, उसे ही प्रश्नकर्ता के मन की बात समझो।' स्वामीजी की बात सुनकर मैंने उस भक्त से कहा, 'अच्छा, तुम्हारे मन में क्या है बताऊँ ?' यह कहकर मैंने ध्यान के द्वारा मन को बिल्कुल खाली कर दिया। उसके बाद देखा कि एक विचार उठा है। तब भक्त से कहा, 'तुमने यह सोचा था ?' उसने स्वीकार किया।"

* * * *

जनवरी, १९२६ ई० में रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की प्रतिष्ठा करने के लिए पूजनीय महापुरुष महाराज बहुत से साधु-ब्रह्मचारी और भक्तों के साथ श्रीवैद्यनाथधाम पधारे और वहाँ लगभग एक महीने तक रहे। उस समय विद्यापीठ के साधु-ब्रह्मचारियों को उनका दिव्य संग तथा उपदेश लाभ करने का सुअवसर प्राप्त हो सका था। बड़े आनन्द से दिन बीत रहे थे। एक दिन अचानक ठंड लग जाने से महापुरुषजी को तेज जुकाम और श्वास का दौरा हो आया। इस समय एक संन्यासी एक दिन सबेरे जब प्रणाम करने गए, तो देखा कि पीड़ा की अधिकता के कारण उन्हें बात करने में बहुत कष्ट हो रहा है। फिर भी उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा, "कैसे हो ?"

संन्यासी—"हम लोग तो ठीक हैं। आप कल रात कैसे थे?"

महापुरुषजी—"रात में अत्यन्त कष्ट हुआ था। सर्दी से सम्भवतः नाक बँध गई और साँस रुकने तक की नौबत आ गई। दमा भी बढ़ गया। बैठने में, करवट लेकर सोने में, किसी तरह भी आराम नहीं मिला। चारों ओर तकिए लगाकर—जैसा अभी देख रहे हो इस तरह—तकिए से सिर टेककर भी रहा। उससे भी कष्ट कम नहीं हुआ। धीरे-धीरे अनुभव होने लगा मानो सब इन्द्रियाँ बन्द हो रही हैं, और प्राण मानो अब छूट ही जाएँगे। तब लाचार होकर ध्यान करने लगा। बुढ़ापे का ध्यान है न—थोड़ी देर में ही मन (हृदय को दिखाकर) एकदम भीतर की ओर चला गया। तब देखता हूँ—न कोई कष्ट है, न यन्त्रणा। स्थिर और शान्त अवस्था हो गई। देखा, बाहर का आँधी-तूफान उसे स्पर्श तक नहीं कर सक रहा है। उसी अवस्था में कुछ देर रहने के बाद मन फिर बाहर की ओर आ गया। तब देखता हूँ कि कष्ट पहले से कुछ कम हो गया है।"

संन्यासी—"वह कौन सी अवस्था है?"

महापुरुषजी—"वही तो आत्मा है।"

* * * *

सन् १९२७ ई० के अन्तिम भाग में महापुरुष महाराज जब काशी गए, तब बातचीत के प्रसंग में एक दिन कहा था, "यह सम्पूर्ण काशीक्षेत्र ही शिव का शरीर है। हम लोग शिव में वास कर रहे हैं।"

और एक दिन कहा था, "यह है महाश्मशान। यहाँ

गृहस्थों के लिए संसार करना ठीक नहीं। जो भगवान को पुकारे, उनका नाम जपें, उन्हीं का यहाँ रहना उचित है।"

काशी से मठ में वापस आने पर महापुरुषजी को वातप्रकोप हो गया। दवाई आदि से भी कुछ लाभ न होते देख एक दिन पूर्वोक्त संन्यासी ने उनसे एकान्त में पूछा, "डाक्टरों का कहना है कि आपको वायुरोग हुआ है। पर मुझे तो ऐसा नहीं मालूम होता। यह कोई योगज व्यापार है; क्योंकि काशी से आने के बाद से ही आपको ऐसा हो गया। काशी में आपको क्या किसी प्रकार के दर्शन हुए थे?"

महापुरुषजी—"हाँ, काशी में एक श्वेताकार योगी-मूर्ति देखी थी। तभी से ऐसा हो गया है।"

# हमारे प्रकाशन

१-३. श्रीरामकृष्णवचनामृत — तीन भागों में—अनु० पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रथम भाग (तृतीय संस्करण)—मूल्य ६); द्वितीय भाग (द्वि.सं.)—मूल्य ६), तृतीय भाग (द्वि. सं.) — मूल्य ७)

४-५. श्रीरामकृष्णलीलामृत — (विस्तृत जीवनी) — (तृतीय संस्करण) दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ५)

६. विवेकानन्द-चरित — (विस्तृत जीवनी)—(द्वितीय संस्करण)— सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७-८. धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द — दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २॥)

९. परमार्थ-प्रसंग — स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई)
कपड़े की जिल्द, मूल्य ३॥)
कार्डबोर्ड की जिल्द, " ३।)

## स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

१०. विवेकानन्दजी के संग में—(वार्तालाप)—शिष्य शरच्चन्द्र, द्वि. स., मूल्य ५।)

११. भारत में विवेकानन्द—भारतीय व्याख्यान—(द्वि.सं.) ५)
१२. ज्ञानयोग ३)
१३. पत्रावली (प्रथम भाग) २=)
१४. पत्रावली (द्वितीय भाग) २=)
१५. देववाणी २=)
१६. धर्मविज्ञान (द्वि.सं.) १॥=)
१७. कर्मयोग (द्वि. सं.) १॥=)
१८. हिन्दू धर्म (द्वि. स.) १॥)
१९. प्रेमयोग (तृ. सं.) १।=)
२०. भक्तियोग (तृ. सं.) १।=)
२१. विवेकानन्दजी से वार्तालाप १।=)
२२. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (च. सं.) १।)
२३. महापुरुषों की जीवनगाथायें (च. सं.) १।)
२४. परिव्राजक (च. सं.) १।)
२५. प्राच्य और पाश्चात्य (च. सं) १।)

द्वि. सं., सजिल्द, सचित्र, आर्ट पेपर के सुन्दर जैकेट सहित पृ. सं. ४६३, मूल्य ६ रु.

"भारतीय और विश्वसंस्कृति के पुनरुद्धार में अपना सर्वस्व न्योछावर करनेवाले भारत के अमर साधक स्वामी विवेकानन्द का यह जीवन-चरित्र प्रत्येक हिन्दू के लिए पठनीय है।"

—'सरस्वती'

"स्वामी विवेकानन्द एक महान् व्यक्ति थे। पाश्चात्य देशों को भारतीय वेदान्त के सत्य से परिचित कराके उन्होंने हिन्दू धर्म को वहाँ भी सम्मानित स्थान दिलवाया है।... उनकी साधारण बातों से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है।"

—'सरिता'

## भारत में विवेकानन्द

विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान, द्वि. सं., सचित्र, जैकेट सहित, पृ. सं. ४९८, मूल्य ५ रु.

"पाश्चात्य देशों के भ्रमण से लौटने पर स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा लंका और भारत में दिए गए भाषणों का संग्रह। इन भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषणों में वेदान्त का सच्चा स्वरूप उद्घाटित है। आज की परिस्थिति के उपयुक्त उनके राष्ट्रनिर्माण सम्बन्धी वैध एवं ठोस विचार विशेष प्रयोजनीय हैं।"

## विवेकानन्दजी के संग में

(वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र, सचित्र, सजिल्द, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेट सहित, द्वि. सं., पृ. सं. ४५०, मूल्य ५)

"स्वामी विवेकानन्दजी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कलाविषयक तथा भक्ति सम्बन्धी सम्भाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथप्रदर्शक संग्रह। इन सम्भाषणों में उन्होंने यह दर्शाया है कि भारतवासी अपनी मातृभूमि का किस प्रकार उद्धार कर सकते हैं।"

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर-१, म. प्र.